

खून के बीटे : इतिहास के पत्रों पर

भगवतशरण उपाध्याय की लेखनी के बारे और उनकी विद्वता से हिन्दू माहित्यमें भवीतोंपरि चरित्रित है। इस पुस्तक में उन्होंने मारतीय समाज की ऐतिहासिक व्याख्या भी है और प्राणपरिवद्यों की धर्मियत उड़ा दी है। एक अत्यन्त गमधीर विषय को सख्त मुकेथ योर रोचक शैली में प्रस्तुत करके लेखक ने हिन्दू साहित्य की—बोजबू रुचा की हृकि जिस समय ये लेख 'जनवाणी', 'इंस', 'नवा समाज' आदि मासिक पत्रों में छोड़े गए, उन्होंने एक अच्छा लासा तदहल्का मना दिया था। मारतीय वर्गाश्वम् सुमाज की इसमें अधिक वैज्ञानिक और विषद व्याख्या नहीं देखी गयी। मूल्य २॥)

मिस्टर तिवारीका टेलीफोन

(हास्यरस की अपूर्व पुस्तक)

[पढ़िये और हँसिये]

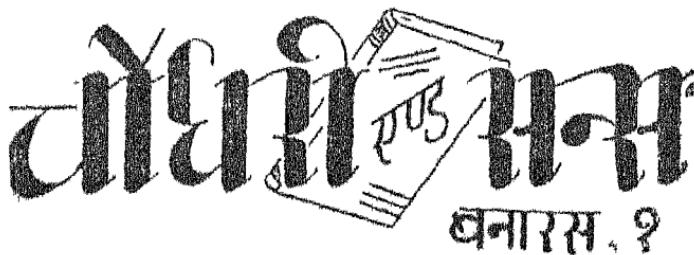
लेखकः—

कोर्टशिंग, फ्रेंचकट, लेखक की बीची, चारचंदूल,
गुण्डा, वेदना, अन्धकार आदि

अनेक पुस्तकों के
रचयिता—

श्रीयुत सरयु पण्डा गौड़,

प्रकाशकः—



द्वितीय
संस्करण

*

{ मूल्य
१।।।

❀ हमारी प्रकाशित पुस्तकें ❀

२॥) आशियाना	२॥) इशारा	२॥) परीहा ओले आधीरात्
२॥) जलन	३॥) निर्मोही	३) विष्ववी वीरांगना
४) लवंग	४) मंजिल	२) प्यासी तलबार
५॥) नीजम	२॥) पागल	२॥) नर और नारी
६॥) अकेला	३॥) पविहरा	१॥) होटल में खूब
७) कुँकुम	३॥) पारत	२॥॥) बड़े चाचा जी
८) पगडण्डी	२॥) ममता	१॥॥) राजपूतनन्दिनी
९॥) घड़कन	२) महामाया	१॥) साहसी राजपूत
३॥) सुमदाज	३॥) खँडहर	३) पीली कोठी
३॥) पायल	२) सोलह अगस्त	३॥) झाँसी की रानी
२) नीजमणि	१॥) दो किनारे	२॥) मंदिर की नर्तकी
२॥) चौरंगी	२॥) सांवरिया	२॥) काली घटा
२॥) सहारा	४) अँगढाई	१॥) अमरतिह राठौर
२॥) गँदरा	२॥) सारोदारा	३) बाजी की बेटी
३॥) नीजमणि	३॥) नीजकी में जाश	१॥) प्रेम के आँसू
Durga Janmabhumi Patriary, १॥)	N. In I. A.	२॥) मन की पीर
२॥) ख्याम	१॥) गरीब	१॥) उनडा घर
५॥) नीजमणि	२) हाहाकार	३) घर की जाज
२॥) लालरेखा नीजी लालयासी आँखें	१॥) पृथ्वीराज चौहान	१॥) पृथ्वीराज चौहान
८॥) देवल (चियाग ४॥) आत्मदाह	४) भारत सन् ५७ के बाद	१॥) चौरांगी रोटी
१॥) नीजमणि (पुस्तक) १॥) रोटी	३॥) बीम दुर्गादास राठौर	३॥) बीम दुर्गादास राठौर
४॥) खूबियाँ	१॥) सरदार भगवतिह	२) सरदार भगवतिह
२॥) संसार की भीषण	१) गुलामीप्रथा का उन्मूलन	१) गुलामीप्रथा का उन्मूलन
रज्यकान्तियाँ		कर्ता आदाहम लिंकन

मुद्रक—पूर्ण ज्ञानकीशरण त्रिपाठी, सूर्य प्रेस, काशी।

टेलीफोन नं०—१

अजी, ओ ओ !—मेरे अपर देशी प्रीतम ! तनिक
दो-दो, बातें मेरी भी सुन लो, दिलबर !

आह —! जबसे तुम्हारे अनन्त कोमल प्रेम-की कठोर ढाक-
गाढ़ी हमारे दिल की पटरियों पर फुलफोर्स से समीर के सदृश
सनसनाती वेतहाशा भागती जा रही है—तब से मेरी दशा—
हू—हू—हू—! दैयारे, क्या कहूँ—भगन भवन की सड़ी शहतीर-
सी निकम्मी, नीरस, दृढ़ वेश्या की तपस्या-तुल्य विफत और
बिना 'सोल' के 'शू' की नाई व्यर्थ हो गई है ।

आह मेरे मालिक ! मेरा मन, भाँइ में पड़े चने-सा भड़भड़,
पुरानी माटर बस के पुजों की भाँति हड्डहड्ड और पाचन-शक्ति-
विहीन उदर खा गड़गड़ करता रहता है । अपनी इन अंसह
मूक व्यथाओं और मर्मान्तक पीड़ाओं की लोल लज़ियाँ लोहे
के तारों में पिरोकर अपने आगाध अश्रु-सागर में प्रवाहित कर
दिया । क्यों ? इस हेतु कि यह मेरी व्यथा-मालिका मेरे अप्रु-
उद्धिकी जहरों के संग गुलटता-पुलटता 'चीर-सागर' में जा
मिले और वह मेरी मूक विरह-वेदना तुम्हें सुना ढाले । पर हाय
रे हाय ! ऐसा न हो सका, मेरी वह 'पीड़ा-माला' तुम्हारी
'काँटीबाली सेज' के पैंदे में ही उलझ-छाँटक कर रह गई । ए-ए-
अजी ओ विराट ! तनिक अपने विशाल वरद हस्त से दटोक्को

प्रभो, बस-बस, सेज के पेंदे में ही तो अटकी है मेरी वह
विरहमाला !

ओ—नाथ—! हाय—हृष्णेश्वर !

क्या सुनाऊँ ? अपनी चुप—और बिल्कुल निखालिस—
खामोश दर्दों-करियाद ? कसक की कठिन मार से, मरे अति छुट्ट
हृष्ण-धर्थल में प्रति मुहर्सी—‘कवेटा’ और ‘विहार’ का भूकम्प ही
रहा है । मरितक पर जैसे कोई ‘गच’ पीट रहा है ।—कानों में
जैसे तम्बू हशलाका अवाध्य गतिसे घुसेडित हो रही है । यह
है, मेरी निस्सीम पीड़ाओं की कहण कथा । हे अनन्त ! जिसे
अवणकर नगराज भी नाक धुन उठे । बिहग बालिकायें भी
‘चीं-चीं’ कर उठें । अजी, और तो और मेरी दीन दशा पर,
यदि शृगालियाँ भी न चीख उठें, तो फिर मेरी पीड़ा का मूल्य
ही क्या ?

हे मेरे सर्वस्व !

मेरी असीम आह की स्तिंघ तपन से सारा ब्रह्माण्ड क्षाररे
हो रहा है । मेरे पुरातन ‘बीन’ के ‘तार’ तो आज आदम-हौआ
की जन्म-तिथी से ही दूटे-जंग खाये पढ़े हैं—इधर एक कहर
और नाजिल हुई कि मेरी सर्द आहों को तूमार से, उसकी तूमड़ी
भी तड़ाक हो गई, और तृण-पत्रादि आच्छादित मेरे भग्न
कुटीर के बचे-खुचे खर-पात भी स्वाहा हो गये । अब न तो
‘बीणा’ रही, न भग्न कुटीर ही, अब भज्जा के भकोरे में परंग
की भाँति मारा मारा चलता हूँ ।

ग्रियतम !

यह तो मेरी मुसीबतों का दर्दिला व्यान है ! तुम्हारी
प्रशंश-पीड़ा के कोमल प्रहार का मधुर परिणाम है !

नाथ ! अब विलम्ब न करो, शीघ्रातिशीघ्र अपनी प्रेम-डोरी
लटकाओ, जिसपर आखड़ हो मैं तुम्हारे स्वर्णित संसार में जा
धसूँ । हाँ, एक अनुनय, छोर खुब मोटो और बलिष्ठ लटकाना ।
सूक्ष्म और अलक्ष्य प्रणय-छोर मैं न देख पाऊँगा, क्योंकि मैं
अभी अपनी आँखोंका 'पावर' इतना तीव्र नहीं बना सका हूँ ।
और मैं भी सूक्ष्म तथा लघु के बजाय महा-स्थूल ही हूँ । शायद
तुम्हारा कोमल प्रणय-न्तनु कहीं बीच में ही ढूट गया; तो
मेरा भरता ही निकल जाएगा ।

इसी कारण हे अथाह ! छोर की मजबूती जाँचकर ही
लटकाना । इत्यलम् ।

टेलीफोन नं०—२

सुनिये—

उसदिन हमारे घर हमारे धोर दुर्भाग्यसे कुछ मेहमान सज्जन आये थे । ये मेहमान सज्जन क्या बता हैं और इनके शुभागमन से कैसी दुर्गति घरवलों को उठानी पड़ती हैं, इसकी हालत उस गरीब से पूछो जिसका घर महोने में पन्द्रह बार इन भलेमानसों के कदम-गुवारक से आबाद नहीं बर्चाद होना है । गेहूमान क्या आये, गरीब की शामत आयी । दोनों जून “पराठे” का भोजन, कच्चौरियों का नाश्ता करते २ उस अभागे मेहमान का कचूमर निकल जाता है और मेहमान भी ऐसे ब्रह्मपिशाच होते हैं, जहाँ परवे कि फिर उसका पिण्ड काहे को छोड़ें, जब तक उसे भली तरह तबाह न कर दें ।

सो साहब मेरे घर भी इन ब्रह्मपिशाचों की एक बड़ी जर्ब-दस्त टोली आई थी-कुल १५ थे, एक बरात ही समझ लीजिये । मैं सुबह २ इन सज्जनों के स्वागत सत्कार के लिये सौंदा जाने बाजार गया था कि, हमारे नगर की धोर कुण्ठणता के धवल-खजा स्वरूप श्री खेदमल खला ने अपने दोनों हाथों का ‘सिंग-चल’ ताबड़तोड़ हिला २ कर मुझे बुलाया । मैं भी इस आशा से—शायद खजाजी को कहीं कुछ पूजा-पाठ तो नहीं कराना है जो इस परीशानी से मुझे बुला रहे हैं—तभ्येर ढेग छालसा

इनकी दूकान पर गया । वडी आजिजी से पूछा—कुशल तो है ? फिर वे एक साँस में कहने लगे—

सब कुशल है तिवारी जी । मगर इधर बीच में कुछ गड़-वडी आ खड़ी हुई थी और वह भी अकारण । खामखा कुछ लोग मुझे सुधारने के लिए सुफिया पुलिसकी भाँति अहोरात मेरे पीछे पड़ गए हैं । माना, मैं बूढ़ा हूँ—हालाँकि मैंने अपने को स्वप्न में भी बूढ़ा न समझा और न अपनी काया में मैंने कभी वैसी वृद्धता का ही अनुभव किया । कसम ‘जाकड बही’ की अगर अपनी तोंद से ही आजकल के युवक बनाम नाजीं की पुतली बालों को सिर्फ एक ही बार हरपेट दूँ, तो वे मारीच की तरह लंका में ही पनाह पावें, या उनकी कोमल काया का कथूमर निकल जाए । जी हाँ, अपने चौले की फक्त तोंद जैसे नाजुक चीज में जब इतनी बूत है, तब राम-दोहर्इ तुम्हीं कहो भइया क्या मैं बूढ़ा हूँ ? आजी, मैं बूढ़ा हूँ तो जबान कौन है ? आए तो तनिक मुझसे पंजा ही लड़ा ले । सो साहब इन खप्तुलहवासों की टालियाँ बर्साती मच्छर की तरह मेरे इर्द-गिर्द भनभनाया करती हैं, और मेढ़क की भाँति अपने सुधारनाड़ के कटु ‘टर्रटों’ मेरे मेरा कान फाढ़े ढालती हैं । रुपये मैंने कमाए, परिश्रम मैंने किए, मानापमान की विषम छूँट मैंने पिए, गहाजनों और आफिसरों के लात मैंने खाए, जूते मैंने चाटे, सो मैं अपने रुपए धर्मशाला, अनाथशाला और विधवाशाला बनाने में चूना कर दूँ ? मिलना-जुलना तो तेरह-बाइस, जल्टे हमारी उस बहुठवय-साध्य पोखरे इमारत में कहरे-खुदा के शिकाद, लूले, लौंगड़े, अन्धे, अपाहिज, अबाबीलों की तरह बसेरा लेंगे और अपनी गन्दगी और करुपता की जग्ज लीला से मेरे आवास को साक्षात् नर्क का रूप दे डालेंगे ।

यदि वे वैसीही सुकीर्ति और भले कर्म किए होते तो परमात्मा उन्हें अन्धरा, कोटिया क्यों बनाता ? फिर वे भी महलों में सौजें मारा करते । मगर नहीं वे तो अधम हैं, और परमात्मा द्वारा, अपने कृत महापाप का महाप्रायश्चित्त या भोग पा रहे हैं, तो फिर ऐसे खुदाई दुश्मनों को पनाह देकर तो बाबा मेरे, खास खुदा से ही सरासर बग़बात करनी है, तो मैं खुदा का बागी बनने से पहले कान बमेठता हूँ । जाओ, मुझे कृपण या शैतान ही कहा करो । मगर भगवान् तो मेरी भलभांसी का कायल होगा कि मैंने उसके मुलजिमों की कमी कोई सेवा, सहायता नहीं की । वह जहर मेरे लिए सदा बैकृष्ण का फाटक खोले रखेगा, वहाँ तुम्हारी बड़बड़ाहट कारगर न होगी ।

हाँ, मेरे कोई सन्तान नहीं है । वे कहते हैं—‘नाम अमर होने के लिए कोई कीर्ति कर जाइए खन्ना जी ?’ तो सन्तान तो भाई मैंने जान-बूझकर पैदा न की, यह कोई बात नहीं कि सन्तानों-त्पत्ति की मेरे मैं शक्ति ही नहीं । मैं तो अपने पड़ोसी सेठ हडपमल जी की सुधरी संतान की सुकीर्ति नित्य ही दानों जून आँखें विदोर-विदोरकर देखा करता हूँ । पिताका शुभ नाम उनकी कीर्तिध्वजा-रूपिणी सन्तान बबुआ हलखोरी परसाद ने रखा है—‘बूढ़ा शैतान, और माता का ‘पगली बुड़ी’ सुबह शाम ‘लड़ युद्ध’ होता है । वैचारे हडपमल जी पति-पत्नी जिन्दगी से बैजार हो रहे हैं । कई बार मेरे निकटे प्राणगमन की युक्ति पूछने आए । साहब, यह तो सन्तान जन्माने की आफतें हैं, खूबियाँ हैं । चूल्हे में जाप ऐसी बला की कीर्ति और भाँड़ में जाय सन्तान ! ‘जो न मेरे रामका, सो किस काम का !’ बाबा तुलसीदास ने भी कहा है—

‘अर्द खर्ब लों द्रव्य है,
उदय अस्त लों राज ।
जो तुलसी निज मरन है,
तो आवे केहि काज ॥

मरने के बाद क्या होगा ? इसे देखने के लिप कौन सरग में दुर्बीन लगाए थैठा रहता है, या धराधाम पर ही आता है । यह तो साहब, सब महज फिजूल के दिला वे की बातें हैं, यह कीर्ति करो तो वह यश लूटो । अरे यश कीर्ति को लूटेंगे वे ‘दुश्मने खुदा’—अन्धे लंगड़े जो निहायत उम्दे पैलेशिअल बिलिङ्डग में बाप के घर की ताईं मजे करेंगे । खन्ना जी उन खरगोशों में नहीं हैं, जो धास के लिप अपनी जान, अपनी थैली बुर्ज कर दें । यहाँ तो सोहत आने के सौलह आना व्यापारी हैं, नफे का रोजगार बताओ, कहो थैली की पेंद काट दें । अजी बाह ! मकान बनवावे हम और उसमें अड्डा जमायें ए संसार-भर के अधमाधम । याद मैं वैसा भकुना होता तो आज पापड बेजते-बेलते खन्ना जी साहब न कहलाता ।

अजी साहब, मैं इन सुधारकों के फीतने का क्या इजहार करूँ । हरे कृष्ण-कृष्ण ! ये सुधारक हैं कि निखालिस पाकिट-मार हैं । देखियगा भाई आप भी अपनी जेब से हरवक्त चौकन्ना रहियेगा । एक रोज इनकी एक टोली आई, अभी सबेरे ही सबेरे दूकान खोलकर थैठा था । इनकी सूरत पर जो नजर पड़ी, क्या बताऊँ दिलो दिमाग दोनों जलते पलीते बन गए । इन अहमकों को यह भी नहीं भालूम, अभी सुबह-सुबह की बेला है, अभी दरी, जाजिम, मशानद वही बगैरह रखी ही जा रही है, मैं क्या भूखे गृह की तरह मँडरा रहा हूँ ? मेरी जो चढ़ी

त्यौरियाँ उन्होंने देखी, तो कुछ सिटपिटाये—‘आपरे भूखे भालू की तरह ताक रहा है, ‘चलो लौटो’ एक ने कहा। मगर साहब थे चन्द्रावाले थे हया भी तो परले सिरे के होते हैं। दूसरा बोल उठा—‘बहुत करेगा तो कुछ न देगा, काट तो न खाएगा, जलो जब आगए हैं तो अपनी कह सुनावें।’ भला इस जुल्म का कोई पारावार है, जिसकी शक्ति भर देखने से आदमी का कलेजा कौए की तरह ‘कँव-कँव’ चिल्ला उठता है उससे खामखाँ सुठमेड़—? अच्छा आवो बच्चू लोग। मैं तैयार हो गया। एक के बाद दूसरे मेरी गहीपर परेड में सिपाही की तरह घड़े हो गए। वही खादी की गाँधी कैप, वही कुर्ता और चदरा। मैंने पूछा—‘कहिए यह काफला किधर को लूटने चला ?’

एक ने कहा—‘आपके ही चरणों तक !’

मैं—‘तो अब तो पहुँच गए न, फिर खस्मे की तरह अड़े क्यों हैं, रास्ता नापिए !’

दूसरा बोला—‘एक दरखास्त है। एक सवाल है।’

मैं—‘दरखास्त—! अरे, मैं क्या कोई जज-कलेक्टर हूँ, जो मेरे यहाँ दरखास्तें पढ़ती हैं। और सवाल तो शायद स्कूलों में पूछा जाता है !’

वे—‘नहीं, आप बड़े हैं बड़ों से विनीत स्वरों में ही विनय किया जाता है।’

मैं—‘जी नहीं, बड़े आप हैं मुझसे नषा लीजिए, कम-से कम आप ढेढ़ हाथ बड़े हैं।’

वे तनिक सहज सज्जनता का अभिगान करते मुस्कराकर बोले—‘बड़े के मानी कद के नहीं, गुण के हैं। बड़ा ताड़ होता है, वह बेकार है बरगद की लघुता के सम्मुख।’

मैं—‘ओह, आपने मुझमें कोई बड़ा गुण देख लिया है, और ‘बह गुण’ शायद मेरी लोहे की सीजोरियाँ हैं। क्यों ?’

वे भरे बन्दर की नाई दाँत निपोरकर बोले—‘हैं-हैं-हैं हैं—!!! आपकी कृपाप्राप्ति चाहते हैं।’

मैं—‘क्या कृपा चाहते हैं ? चरण धूलि चाहिए ?’

चौथे बोले—‘अरे भाई, क्या बात का बतांगढ़ बना रहे हो, जो कुछ निवेदन करना है—स्पष्ट शब्दों में खलाजी को सुना दो। अभी कितने कार्य शेष हैं ?’

मैं—‘हाँ-हाँ, जो हो स्पष्ट ही, सज्जनता के आवरण को हटाकर ही।’

एक बोले—‘यहाँ एक विराट् सभा होगी, उसमें बाहर के बड़े-बड़े विद्वान् और देशोपकारी सज्जन पधारेंगे, उनका देशोद्धार, समाज-सुधार पर भाषण होगा।’

मैं—‘बड़ी अच्छी बात है, फिर ?’

वे—‘उसमें कुछ व्यय भी अपेक्षित है।’

मैं—‘फिर आप पहेली बुम्हने लगे, व्यय भी अपेक्षित है या नहीं, इससे अपना क्या भरतवस्थ है साहब ?’

वे—‘आप कुछ सहायता करें।’

मैं—“हाँ, काम से छुट्टी रही, तो देशोद्धार का भाषण सुनने आजाऊँगा।”

वे—‘वह तो आप आही जायेंगे, सम्प्रति उनके भोजनादि के प्रबन्ध के लिए आप कुछ सहायता करें।

मैं—‘अच्छी बात है, कुत्ता कितने सज्जन हैं ?’

वे—‘कम से कम पाँच छः से क्या कम होंगे ?’

मैं—‘तो वे लोग तो बिलकुल स्थागी जीव और बहुत बड़े लोक-हितकारी होंगे ?’

—‘हाँ-हाँ, इसमें क्या सन्देह ?’ सबके सब एक खंडर में घोल उठे ।

मैं—‘भोजन भी अलग ही और गरीबों की ही भाँति करते होंगे ?’

वे सब—‘जी हाँ, वे लोग—? अरे, साक्षात् दरिद्रनाश यण ही तो हैं !’

मैं—‘तो मेरे नाम छः पाव पानी, ढेढ़ सेर सत्तू लिंख लीजिये ।’

वे—‘हूँक-हूँक—आप यह क्या कहते हैं खबाजी ! वे सत्तू खायेंगे ! राम-राम—!! आजी, इन छः आदमियों के स्वागत सत्कार में करीब सैकड़ों रुपये की आवश्यकता है ।

मैं—‘तब तो वे छोटे-मोटे ‘प्रिन्स आफ बेल्स’ ही हैं, आप उन्हें स्थागी और दरिद्रनाशयण कर्यों बता रहे हैं ?’

वे—‘वे तो स्थागी और दरिद्रनाशयण हैं ही, पर अपना तो कर्तव्य है उनका विधिवत् स्वागत करें ।’

मैं—‘तब तो आप उन्हें बलपूर्वक एक छोटे-मोटे ‘प्रिन्स आफ बेल्स’ बनाना चाह रहे हैं क्यों ? तो साहब, एक स्थागी पुरुष को कसदन शाह बना देने के लिए मैं कभी आपने पैसे बर्बाद करने की महान्मूर्खता नहीं कर सकता । कृपाकर आप अपनी राह लें ।’

वे फिर हठपूर्वक बोल पड़े—‘मुनिष—’

मैं बीच में ही बोल लठा—‘सब सुन चुका साहब, आप व्यर्थ कष्ट न कीजिए और इतनी दया और रखिए कि मुझे कभी बड़ा समझने का कष्ट आपने मस्तिष्क महाराज को न दीजिए।’

वे भिन्नानी भधुमक्खी की भाँति जाने क्या-क्या भननाते चले गये। इधर मैं भी भगवान् को धन्यवाद दे, आपने काम में लग गया। यह तो इनके तमाशे हैं।

इस घोर कृपणके सारे वक्तव्यों को अवणकर मैं भी भननाता हुआ उठ खड़ा हुआ। किस आशा से गया था, और इस कम्बख्त ने कैसी २ बातें सुनाकर पूरे घंटे भर मेरे वक्त के साथ ही मेरा दिमाग भी चटता रहा। पर हाँ भाई, जबाब इसने खूब दिया, उन सुधारक महानुभावों को।

भवदीय—

तिवारी जी ।

टेलीफोन नं०—३

हजूर !

क्वचिद् आपने हमारे दादा गुरु, श्रीमान् महामहोदराचार्य, विद्या-बहादुर, साहित्यक-गज, निखिल शास्त्र-निष्ठात् आदि वे के अनेकानेक सुन्दर, सुयोग्य उपाधियों से अलंकृत, सुमजित, महामहिम श्री मतिभ्रम शर्मा का शुभनाम न सुना होगा। आपकी विद्वत्ता, सुन्नता और सुयाख्यता एवम् अध्ययन के विषय में यही कहना अल्पम् होगा कि आपने पढ़ते-पढ़ते अपना माथा खराब कर दिया, शरीर गला दिया, संसार को मुला दिया। इतना पढ़े कि चन्द जाहिलों ने आपका नाम ही मतिभ्रम रख दिया। किन्तु-परन्तु, वस्तुतः श्रीमान् दादा गुरुजी मतिभ्रम थे, इसका प्रमाण तो क्वोई नहीं देता। हाँ, मेरे ग्राम में, ग्राम के पाँच कोसी—छै कोसी में, उनके प्रबल पाण्डित्य के निस्तव्त हर खासो-आम में काफी, हव से उदादा शोहरत है। उनकी परिष्वताई की बड़ाई हरशब्दा की जुबान पर आज भी नक्श है। कहते हैं बीर और सूर्तिवान तो ऐसे थे, कि वस एक ही छलांग में ढाई हाथ के ऊंचे-चोड़े टीले बेसाखता फॉर्क जाते थे। पाचन शक्ति का यह हाल था, कि एक बालटी निछकी दुधिया भंग ही साँस में उदरस्थ कर लेते थे।

पठन-पाठन की पारंगता इस डिग्री पर थी, कि बाबा शंठ नारायण की कथा का पत्रा जहाँ हाथ में उठाया कि अथ से इति पर गहुँचना तो चन्द लेहजे की बात थी। दारोगा-समसती (दुग्धी समसती) जैसी वीसियों योटी पोथियों का पाठ घंटे में चार दफा कर जाना उनके लिये उसीप्रकार आसान था, जैसे मक्खन की गोलियाँ गले के नीचे उतार जाना। उनकी ओर सुयोग्यता के विषय में विरोध करना व्यर्थ ही है, उनकी प्रशंसा में, गुणाकीर्तीन में 'माधुरी, सुधा, चाँद के विशेषांकों से भी दुग्ने-तिग्ने-चौग्ने और द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ से भी सात गुने सौटे स्थूल अक निकाले जा सकते हैं।

मैं आपको उनके क्रतिपथ आदेश सुनाऊँ ! यद्यपि सुझे इसकी अपनी कोई खास ख्वाहिश न थी, पर यह उन्हीं स्वर्गीय दादा श्री० का आज्ञा-पालन है ।

एक दिन ज्येष्ठ में सन्ध्या समय जब कि स्तिष्ठ समीरण, सुरभित सुमनों की भीनी-भीनी सुरभि ले-लेकर—उदार दाता की तरह, कृपालु, सहदया नायिका की भाँति लोगों में वितरित कर रहा था, उस समय श्री० दादाजी भ्राम से दूर, बहुत दूर, एक घनी रसाल बाटिका में हरी-हरी दूध पर गमला बिछाये, आसन जमाये बैठे थे । उनके सम्मुख थी उनकी जीवन-सगिनी परम सौख्यप्रदायिनी भंग से भरी एक बालटी—! मैं सेवा जिज्ञासु भाव से करबद्ध हो बैठा था । दादाजी आँखें भूँद कर किसी अनन्त आनन्द की धारणा-ध्यान में समाधिस्थ से हो गये थे । मैं अपना अंगीकृत कर्म—भंग-फेटन कर रहा था ताकि दूध-बीनी, भर्म-ठंडई सब एक में मिल जाये—ध्याय और ईमान की तरह, भर्म और सकवाई की तरह, अमेरिका

और इङ्गलैण्ड की भाँति, जर्मनी और इटली की नाईं । जिस प्रकार तपोनिष्ठ बाबा विश्वामित्र इन्द्र-सभा की परी, 'मैनका जान' के पर्गों के पायल की मधुर ध्वनि श्रवण कर डिग गये, अनन्त की याद की टोह में उनकी दौड़ती हुई और सरपट-विचार-धारा कासिनी के कान्त कलेवर के लहगों के खेरे में घुस कर बिलबिलाने लगी, उसी प्रकार भंग-फेटन की सुखद श्रुतिसुधा ध्वनि, मधुर मिष्ट सुगन्ध ने दादा जी की मोहनिन्द्रा भंग कर दी । वे हड्डवाकर उठे, कि कहों गीदड़ों ने इस निछककी दुषिया भंग में अपना थुथना तो नहीं छूबो दिया । पर मुझे देखकर परम पुलकित हो बोले—कौन ? बेटा भकोल ! खूब फेटदे बैटा—!

'अहा, कैसी मधुर सुगन्ध छढ़ रही है, जी चाहता है बालटी ही पेट में धर लूँ ।'—दादाजी भंग की सुगन्ध से गदगद हो गये । बड़ी भावुकता-पूर्वक, भाव-विभोर हो बोले—बैटा, वत्स ! पुत्र भकाल ! सच पूछो तो भगवान शिव ने संसारियों को विजया-सा पुण्यपादन प्रसाद प्रदान कर चिर ऋणी बना लिया है । जिन्होंने मनुष्य चोला धारण कर भंग नहीं पी, उन्होंने इस प्रसन्नवदना देव-विमोही पृथ्वी का सुख कुछ भी नहीं जाना, उनके जीवन बन्ध-कुसुम की तरह अकारथ ही गये । बैटा, इस दिव्य हृषि-दायिनी सदैव प्रकुल-कारिणी और बाठोयाम भूधो-पदायिनी, भगवती, शिव-प्रिया भंग-भवानी का सेवन जिन्होंने न किया, 'ते मृत्युलोके भूमार हेता मनुष्य रूपेण मृगा इचरंति' हैं । श्री० बाबा शंठनारायेनजी की कथा में लिखा है कि वह आग्र-फल जो सुन्दर आकर्षक होने पर भी बदबूतार और पिल्लुओं से भरा था, इस अधम ने अपने पूर्व जन्म में न तो स्वयं 'शिव सज्जीविनी' का सेवन किया और

न दूसरों को कराया । इसी महापाप के प्रायश्चित्त-स्वरूप इस अधम की ऐसी अधोगत दशा थी । दारोगा-समसती में भी इसका उल्लेख है—चण्ड-मुण्ड या शुभ-निशुभ क्यों मारे गये—? सुसरे भंग की जगह शराब पीते थे, यदि एक भट्टर या सरसों के बराबर भी नियम-पूर्वक भंगाराधन किया करते तो काली, दुर्गा, चण्डी क्या ? सत्रह काली, महाकाली, हाहा-काली उसका कुछ भी नहीं चिगाड़ सकती थीं । व्यास देव भंग की ही तरंग में वेद लिख गये, और तो और, स्वयं सजीव प्रत्यक्ष प्रमाण में, तुम्हारे सम्मुख साढ़े छै फीट का लम्बा आदमी मैं मुस्तैद हूँ । है कोई जोड़ का दिग्गज दुनियाँ में ? इस हेतु बेटा ! नर-नारी, चर-अचर, जीव-जन्तु सब को भंग का सेवन उत्तम है, कल्याणकारी है । दादाजी का यह कथन मिथ्या है, संसार भले ही कहे, पर मैं तो गले पर तलवार रख देने पर भी न कहूँगा । उनकी बातें मेरे लिये सत्य नहीं, महा-सत्य हैं । उन्होंने मुझसे कहा था—

बेटा—भक्तोलनाथ ! जब इस धरती पर कलियुग चारों पाँव खड़ा हो जायगा, तो अजीव-अजीव लोग, विचित्र-विचित्र वस्तुएँ उत्पन्न होंगी । उस समय 'सम्पादक' 'लेखक' 'नेता' आदि नामधारी जीव इस पृथ्वी पर आविर्भूत होंगे । 'सम्पादक' नामधारी जीव एक विचित्र-सचित्र ही महापुरुष होंगे । इनकी छाती पर चार लम्बे-लम्बे पाए बाली चौकी (दादाजी की मर्शा टेबुल से है) सदैव रखी रहेंगी और चार ही टाँग की केवल मात्र बैठने भर के स्थान बाली खाट होगी—जिसपर ये बैठेंगे या झड़ मारेंगे अथवा गाहे-बगाहे एक खर्राटा भी ले लेंगे । इनके राजत्व-काल में श्वेत-पत्रों की वर्षादी होगी, लोहे की कोई नोकदार चौज एक लकड़ी खंड में ठुक्री रहेगी, उसी में

कालिखल पोतकर ये कागजों को गोदते रहेंगे । इनकी दौड़, इनकी बहातुरी, सब उन्हीं कागजों पर ही प्रकट होगी, न ये भंगपीकर पचा सकेंगे, न कोस दो कोस तक दौड़ लगा सकेंगे । इनकी आँखें चार होंगी । दो हमारी तरह सिर के नीचे और दो पीठ पर, उससे आगे-पीछे सबको देखेंगे । इनकी प्रकृति छुछ आजीब होगी—ऊपर मे बड़े सहृदय, पर अंतर से बड़ी भयानक बाणी, बड़ी सुमिष्ट, पर कर्तव्य बढ़ा ही खुँखार । विचार बड़े उदार, पर आचरण घोर संकीर्ण, बोलने-लिखने मे बड़े फूरफूर किन्तु चलने फिरने मे बेहद टिख-टिख!! ये जीव 'परोपदेश कुशल बहुतेरे' का बाना धारण कर अपना राज लेंगे, पर साथ ही बेटा, इनसे बहुत खबरदार हुशियार रहना, क्योंकि इनमे छोटी-सी कलम का करामत से मनुष्य ही नहीं, ईश्वर तक के अस्तिस्त्र को हड्प कर डालने की अपार शक्ति सन्धिहित होगी । राज्य-कान्याज्य, देश-कान्देश इनकी उड़ाली भर कलम की नोक से चौपट-चापट हो जायगा ।

और बेटा, एक बात युझें और चेताव देता हूँ । न कहीं काम मिले, चोरी कर जंल चले जाना, बठाईगरी करना, पाकिंट मारना । न हो इतनी हिम्मत, तो चौक पर चूरन लेचना, नीलाम वालों की दलाली करना, पर बेटा, भूजकर भी लेखक न बनना, न होना । लेखकजी 'अन्धा-गंधा-धर्म रखवार होंगे' । इन्हें कोई दमड़ी सेर भी न पूछेगा । ये बेचारे बेहद पिल-पिल, मायूससूरत और धृष्टिया के लाऊ होंगे । पर, बेटा क्या बताऊँ कलिप्रभाव, इतनी छाछालेंदर हान पर भी सभी लेखक ही बनने के दीवाने होंगे । सम्पादक इनके देवता, प्रकाशक इनके आराध्य, और समालोचक इनके परम पूज्य होंगे । ये

(१६)

बेचारे सबकी नाज़-बरदारी और तीमारदारी में कलपते-कलपते दिन विता देंगे, पर इनका 'दिन' न लौटेगा ।

सो जनाबे-आली ! मेरे बन्दनीय दादाजी तो इस समय नन्दन-कानन में दुष्प्रिया छानते होंगे, पर उनकी बाणी आज सोलह आने वोसठ पाई महा-सत्य हो रही है और उनका यह आदेशानुचर, आजकल 'टीसन' पर मुसाफिरों को 'खेमटे' सुना-सुनाकर कुछ माँग खाता है । कहिए कैसा रोज़गार है मेरा !

आपका —

तिवारी जी ।

टेलीफोन नं०—४

हॉस्टलो—

सच पूछो, तो भाई आजकल संसार में कुछ क्या; सैकड़े पीछे निन्यानवे लोग ऐसे हैं, जो अपनी गरज, अपनी धुन अपने कामके लिये पागल हो जाते हैं और दूसरों को भी पागल बना डालते हैं। वे दूसरों के सुब दुख या चलाहनों को जरा भी नहीं समझते। चाहे तुम सिर धुनते रहो, कत्तों की मौत मरते रहो, पर मुझे तो अपने हलवे माड़े से काम !” हमारा काम हो, चाहे जैसे हो तुम कर दो। हमारे दादा गुरु घेचारे बुगड़ा-चार्य जी शायद इन्हीं करणों से तंग आकर एक दिन पीने वो सेर जसालागोटा पेट में ढाल, संसारी भंकटों से अपने को निकाल, खर्ग में जा निहाल हो गये। पर मरते-मरते थाथाजी अपनी बूझ की सारी गठरी मुझ-जैसे जीर्ण-शीर्ण की कंकाल-मय-काया पर पटक गये। ओर ! गठरी क्या पटक गये; मुझे पागलखाने भेजने का खासा इन्तजाम कर गये। अब लोग प्रति-दिन हजारों की संख्या में जुटकर सेरे सदर द्वारपर कुहराम भचाये रहते हैं, मानो मेरा घर हबड़ा स्टेशन का टिकट धर हो। भला वहाँ तो ३-४ बीवियाँ भी रहती हैं, यहाँ कौन ? अकेला दम ! किसके-किसके प्रनों का उत्तर दूँ। कोई पूछता

है, “भला बुमककड़ी भारत ! यह जो बोलशेविकों के साथ लड़ाई होनेवाली है, वह कब होगी, और उसमें चाँदी, सोना, रङ्ग, बटन, कागज, जस्ता, महँगा होगा या नहीं ! यहि हाँ, तो आप कहें मैं लाख-दो लाख का सस्ता सौदा खरीदकर “जर्मन-वार” सा मालो-माल और राजा बन जाऊँ ।” एक प्रश्नकर्ता सज्जन और है वह है देशभक्त ! इनका प्रश्न यह है, कि बड़े-बड़े ड्योतिषियों की भविष्यवाणी हो चुकी है, कि सन् १९३० में स्वराज्य होगा । यदि सचमुच १९३० में स्वराज्य होगा, तो आप कहें । क्योंकि मैं असहयोग की आँधी के दिनोंमें भदारीपुर थाना, कांप्रेस-कमेटीका मन्त्री था, उस समय के “तिलक स्वराज्य फण्ड” के चन्देवाले “नोट” मेरेपास दो लाख के करीब हैं । स्वराज्य प्राप्ति पर स्वराज्य-सरकार तो उन नोटों का भुगतान अवश्य करेगी ? किर भी मैंने जलती लू में केवल ५० रुपया मासिक बैतन, और सफर में केवल भोजन (पान-बीड़ी नहीं) लेकर सैकड़ों हजारों रुपयों में प्रचार किया है, हजारों सभा में लाखों बार स्पीचें दी हैं और एक हफ्ते की साढ़ी कैद भी भोगी है । कहिये, आखिर मेरी इन सेवा बनाम कष्टों का मूल्य क्या स्वराज्य-सरकार मुझे दारोगा या मैंजिस्ट्रेट बनाकर अदा न करेगा ? कुछ लोगों का यह तकाजा है कि तनिक बूझिये तो कि वह दिन कब आयेगा, जिस दिन संसार के इस छोर से उस छोर तक “ओरेम” का झरणा फहरायेगा ?” इधर सोनागळी जान-बाजार, दालमण्डी, और पटना चौक के निवासियों के सर पर सुधारके भूतन भयंकर किलकार मारकर उन्हें कुरा बना दिया है । ये बेचारी मंगला-मुखी अब कंगला-मुखी हाने वाली हैं, इसी चिन्ता में बेचारियों का शरीर और कलेजा रेगिस्ट्रेशन

हो रहा है । इनका पूछना है,—“श्री देवता जी ! क्या सचमुच हमारे ऐशो-ईशरत में सदा के लिये आग लग जायेगी, हमारे लम्बी चोटी से लोट पोट-बिंदी लगे माथेपर वाकई सुधारकों की टाँगी घट्हरेगी ! हायरे हाय ! जहूद बताओ, देवता ! हम दूसरी राह नापें ।” प्रश्नों का यह जमघट—लोगों का ठट्ट नित्य ही मेरा द्वार पर सुबहो-शाम अजाँ देता है । कितना सोचूँ; कितना ध्यान लगाऊँ ? आखिर भाई, मैं भी तो दो हाथ-पांव का आदमी ही हूँ ! मानो कि ईश्वर की अशेष कुपा, अपार दयासे मुझे लम्बी सूक बूझ मिली है; पर इस सूक के लिये इस देव-दुर्लभ शरीर-पिञ्चरसे प्राण पखेह तो न उड़ा डालूँगा, जिसके लिये मैंने पूर्व-जन्म के अपने गर्दभ-रूप में अपना थुथुना निरन्तर आकाश की ओर उठाकर-चीपों-चीपों की चिरलाहट मचा, ईश्वर की इजलास में अरजी पर अरजी लगाकर इस मनुष्य-काया को, सो भी बुमकबड़ी पाया है । पर मैं पहले ही कह चुका, मतलबी हुनियाँ के बे-सूक; बे-बूझ के लोग मेरी पूर्व-तपस्या के हाल को क्या जानें—उसका मूल्य क्या पहचानें ? खैर किसी का दिल तोड़ना भी ठीक नहीं और जब उस पारब्रह्म परमात्मा ने मुझे अपनी विशेष दैवी शक्ति से विभूषित और विमण्डित किया है, तब उस शक्ति का सहुपयोग करना भी ईश्वराज्ञा का पालन ही है । अतएव हे प्रश्नकर्ता-गण ! हमारी सूक के मार्ग में अटकी हुई बूझ की बात कान झाड़कर सुनो—

गर तुम बोलशेविकों की लड़ाई का दिन, दलाली से—यानी विदेश का सौदा खरीदकर घर से ही चौगुना नफा करना—रुपये कमाने के लिये गिनते हो, तो सुनो । इस “लड़ाई” के बारे में मैंने पूरे बाबन तोले पाव रक्षी सूक्ष्म-बूझ

से काम लिया है । इन दिनों हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े लोग सोवियट रूस की तारीफ करते नहीं आघाते । फिर उस रूस के खिलाफ मेरी आवाजकशी एक बेजा हरकत समझी जायेगी । पर भाइयो ! मैं हूँ बूझकड़ आदमी, जो बूझ हमारी सूझन्हारा में आयेगी, उसे मैं साफ-साफ ही कहूँगा । चुश रहो या खफा ! हमारे दादा-गुरु भी इसी तरह पक्के स्पष्टवादी थे । लोगों का कहना था कि “इस गली में हाथी गया है” पर दादा गुरु ने बड़े भास और बहादुरी से नाल ठोककर सैकड़ों की बातों को उड़ाते-पुड़ाते यह कहा डाला कि—

“लालबुझकड़ बूझ गये ।

‘‘ और न बूझे कोय ॥

पाँव में चक्री बाँधकर ।

हरिन कूदा होय ॥

“यानी हाथी नहीं गया, बल्कि इस रास्ते से पाँव में चक्री बाँधकर हिरन भागा है ।” बाहरे दादा ! बलिहारी है आपके सूझ की ! बस, दादा तो समझने में ‘‘चंगीठी’’ थे; खाली, उड़ेलने भर की देर रहती थी । चुप हो गये लोग ! सन्नाटा खींच गये—उनकी इस अलौकिक अनोखी सूझ-बूझ से ! जी हाँ, जनाव ! यह दास उन्हों विचित्र सूझी अद्भुत बूझी का पड़पोता है । हाँ, तो क्या कहता था—भू-भू—हाँ ! हाँ !!—बोलशेविकों की लड्डाई की बात न ! हाँ, तो उसदिन मैं आपनी सूझ का जाल बिछाकर उसमें चक्र काट रहा था कि, सहसा यह “बूझ” मेरे जिगर में ऐनो धर्ढी की तरह चुभ गयी । “बोलशेविकों के बूते कुछ पार नहीं लगेगा । उनका विचार सिद्धान्त दूषित और अनर्थकारी है । वे बाहते हैं,

संसार में साम्यवादी प्रचार करना, बड़े लोगों-(पूँजीपतियों) के नाम का दिवाला निकालना । यानी दूसरे शब्दों में उनकी गाढ़ी मेहनत, हड्डी-नाड़, दोड़-धृष्ट इत्यादि करके उपर्जित कराई बनाम पूँजी को लूट लेना ।” भला कहो, यह पाप ईश्वर से देखा जायेगा ! अरे ये पूँजी-पति तो उनको प्राणप्यारी लक्ष्मी के कृपापात्र हैं । जिसदिन बोलशेविक लोग, इन ईश्वरीय कोषाध्यक्षों पर-वक्र-हष्टि करेंगे, अरे ! उसी-दिन, उसी क्षण स्वर्ग से सन्-सनाता हुआ सुदर्शन-चक्र इन्हें दीन तेरह कर देगा । सारे मन्मूरे बंटाहार हो जायेंगे । लक्ष्मी के लाडलों से शर मचाना क्या हँसी-खेल है ? साम्यवाद का प्रचार करना क्या थोड़े उपद्रव का आयोजन करना है ? अरे भाई ! जब सब बराबर ही हो जाएंगे, तो फिर बड़े लोगों का काम कैसे चलेगा ? कौन रेलगाड़ी चलायेगा ? कौन आखवार वालों का आखवार गली-गली बेचेगा, कौन प्रेस की ‘ढक्की’ ढार कायेगा ? कौन कुदाल चलायेगा, हल जातेगा ? क्या यह सब काम, सब करेंगे ! तब तो ईश्वरीय विधान में बड़ी-गड़ी बड़ी होंगी ! “लोकरहस्य” की पूर्खी पर सबको समानाधिकार-दात्री पार्वती-सी जबर्दस्त जिह इन रुसी रीछों में है । ईश्वर यह कभी नहीं होने देगा । रुसी साम्राज्यवाद नष्ट करना चाहते हैं । अक्ल के पीछे छण्डा लेकर भागनेवालों को यह नहीं मालूम होता कि बिना दुल्हे की बारात कैसी ? बिना चाँद की रात कैसी ! वैसे ही बिना राजा का राज कैसा ? संसार में घोर अराजकता फैलेगी, बलवान दुर्वलों को चटनी-सा चाट जायेंगे । राजा ईश्वरीय प्रतिमूर्ति है, उसका प्रतिनिधि है, उसपर प्रहार होते समय भगवान क्या चुपचाप अपने प्रति-निधि की दुर्गति देखते रहेंगे ? अरे ! युद्ध के दिन तो इतना

आँधी-पानी आयेगा, कि रुसी भालू उस बवंडर से उड़कर समुद्र के विशालोदर में हृषकियाँ लगाने लगेगा । हमारी राय यह है कि, एकबार अखिल संसार के पूँजीपतिगण अपने साजो, सामान—यानी पगड़ी, चमकन, हैट-कोट, पायजामा, टोपी आदि धारण कर अपनी नक्कारे रुपी 'तोप' का दर्शन रुसी रीढ़ों को करा दें, वह सारा सामला ही ठंडा है । जङ्गली रुसी 'तोप' की भीड़ देखकर डरपोक बिल्ही से मांग खाड़े होंगे । और नहीं तो "प्रभो यीसू क्राइस्ट मोरा प्राण बचैया" तथा "जब भीड़ पड़ी सन्तन पर, तब-तब कुपा करी कहणाकर" तो हैही । इसलिये लड़ाई नहीं होगी । और "वार" के फेर में सौदा खरीदकर, लिजारत के नामपर ग़रीब भूखों के लूटने का महापुण्यश्लोक संकल्प आपलोग 'स्वप्न-धन' सा छूछा-ही-छूछा समझकर भूल जायें ।"

स्वराज्य की बातों में भाई, बड़ा झगड़ा है । स्वराज्य कब होगा ? कैसे होगा ? यह बात हमारी पैनी, चोखी और दूर-नदेश हठिये के भी अगोचर है—लाखों बार तड़ातड़ खोपड़े पर चपतों की निर्भर वर्षा करने पर भी समझ में नहीं आता । यद्यपि बड़े ज्योतिषियों ने १६३० में स्वराज्य-प्राप्ति की बात कह डाली है पर भाई ! हम हैं बुझकड़ आदमी ! जो बूझ मेरे महत्तम मस्तिष्क से जन्मेगी, वही नव-प्रसूत "बूझ" मुख से बहिर्गत होगी । स्वराज्य प्राप्ति के विषय में हमारी सूझ की यह बूझ है कि, जो अवस्था आज है, यदि यही अवस्था भविष्य में बनी रही, तो सन् १९३० क्या ३० जन्म में भी स्वराज्य नहीं होगा । हालाँकि ढाँ० मुब्जे आदि जैसे बड़े-बड़े देशोद्धारक, उपकारक प्लेटफार्मों पर—"क्या २२ करोड़ हिन्दू-सन्तान, मुझी भर मुसलमानों की सहायता बिना

स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकती ? ” इत्यादि कहकर कई बार अपना गला साफ कर चुके हैं । पर जिनकी सहायता के बल पर मुझे महाराज स्वराज्य लूटने का स्वप्न देख रहे हैं, उसकी सफाई अबतक न हुई । सर साहमन के आगमन के दिनों माननीय मालवीय जी के बूढ़े दिलों में भी एक बार तूफानी जोश का ज्वार उठा, पर मचमुच वह उचार ही हुआ । उस लहर में वह उत्तालता न आयी, जो इन आर्य-सन्तानों को अपने में मिला ले । सैकड़ों बार कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास इत्यादि नगरों में लम्बे चौड़े पैकटों की नींव पड़ी, जाखों जगह इत्तहाद की पुरजोर तकरीं हुई, और हमारे गान्धीबाबा ने तो सुलह के नाम पर २२ दिन उपवास भी किया, किन्तु फिर भी दाढ़ी-चौटी एक न हुई । देवल के प्लेटों की तरह बार-बार आपस में टकराती ही रहीं । जेताओं को अब पश्चिम की सैर करने की सूझी है । प्रचार करने, पालिटिक्स स्टडी करने और सोवियट रूस के दर्शन करने आदि-आदि की झूठी बहानेबाजी कर ये लोग देश में “आगलगी” के समय पश्चिम की राह नापते हैं । कांग्रेस में केवल अब कौंसिल की ही चर्चा रह गयी । मियाँ भाई गाजी दिलों को उधर काफिरों के कल्प कर जिन्दे रहने पर गाजी और मरने पर हुरो-गिलमा की प्राप्ति का शोक बेहद सता रहा है, स्वराज्य कैसे हो ? स्वराज्य-प्राप्ति के हेतु हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद निहायत ज़रूरी है, पर यह इत्तहाद हो कैसे ?

इसपर गम्भीरता से किसी ने गौर नहीं किया । मेरी बूझ यह कहती है, कि जब तक ‘रामो-रहीम’ मुहब्बत के सीमेण्ट से एक नहीं कर दिये जाते, और युगल जातियों के जयघोष

के लिये जब तक कोई नवीन मन्त्र या 'कलमे' की रचना नहीं हो जाती, तब तक न मुहब्बत होगी और न स्वराज्य ही मिलेगा ।

मैंने एक सभा में इसी प्रकार अपनी 'बूझ' की विशद व्याख्या पेश की थी । मैंने कहा था, "यदि स्वराज्य तथा शान्ति चाहते हो, तो इस्लाम-सनातन की नक-नक्ती कर दो । हिन्दू मुसलमानों नाम के बदले एक सम्मिलित नाम रखो जैसे—'मुस्लिमार्य' । जप मन्त्र का कलमा जा इलाही इल्लीला, मुहम्मदे रसूलललाह," या 'भूर्भूवः स्वः' आदि के बदले "ओउम् नमः अल्लाहू भगवते रसूलललाह कृष्णाय नमः" का जप-मन्त्र रखो । 'श्रीगणेशाय नमः' 'विसमिल्लाहू रहमाने रहीम' की जगह 'विसमिल्लाहू गणेशाम् तस्सलीम' रखो । प्रार्थना पूर्व या पश्चिम् दिशा न होकर उत्तर दिशा रहे । मन्दिर-मस्जिद के नाम के स्थान पर 'मस्जिदो-मन्दिरः' रखो । जुम्मा या शिवरात्रि के दिन उस 'मस्जिदो-मन्दिरः' में 'मुस्लिमार्य' दोनों जायँ और खड़े होने, उठने-जैठने या नाक ढाबाने के बदले ये नवीन संस्कृत-सम्मिलित जाति—'मुस्लिमार्य' के बल खड़ी होकर उक्त जब निर्मित मन्त्रोच्चारण करें । यस, भगवान् यहीं लतभ है । बाजे का प्रश्न—'मन्दिर-मस्जिद' संहारण-कर्म सधका वस इसी में अन्त है, क्योंकि जब दोनों जातियों के ध्यान, मन्त्र-और स्थान एक हो गये, तो किर भगवान् कैसा ? जाकी रही कुर्बानी की बात, तो यदि हिन्दू गो-रक्षा चाहते हैं, तो उन्हें अपने भाइयों के लिये ईद के दिन अवश्य—सो, पचास बकरों को मुहर्छ्या करना पड़ेगा, जिससे हमारे गरीब भाइयों की अंटी से ज्यादे पैसे खर्च न हों । अब शेष रहा सभाज-संस्कार और शरीयत ! तो इन्हें भी एक घागे मैं पिरो

दो, दाढ़ी-चोटी न रख कर केवल जुलफ रखो । सुन्नत कराने या सूत्र-धारण करने के बदले काले गण्डे पहनो और सिर्फ उस्तरा छुल्ला भर लो । मुर्दे जलाने और गाड़ने के बदले उसे गंगा या किसी दरिया में केंक दो । विवाह के लिये “मण्डप” आदि की तूलतवाल न कर “मस्जिदो मंदिर” में “मुल्ला-पण्डितः” के द्वारा ‘मुस्लमार्य’ निश्चित मन्त्रों का उच्चारण हो, जिसमें निकाह और पाणी ग्रहण के मन्त्रों का मजमूआ हो । तब देखिये स्वराज्य कहाँ जाता है ? अजी, आपकी इस भिलत की वर्ते सुनकर उसका नार्ता भर जायेगी और वह नंगे पांव आपके द्वारपर भिक्षक-सा आ खड़ा होगा ।”

इतने में एक श्रोता—जो शायद स्वराज के भूखे न थे बोले,—“खैर यह तो ठीक है, पह खान-पान के बारे में क्या होगा ? मुस्लमाँ ता बिना मुर्ग मुस्लिम के एक लुकमा भी हल्क के नीचे नहीं उतारते, बिना हाथ-पाँव धोये जूते पहने फर्श पर खाते हैं, पर हिन्दू किसने ऐसे पवित्र हैं, जो मांस आदि छूते तक नहीं, बिना स्नान किये या चौका दिये एक दाना भी नहीं खाते, वे निरामिष शाकाहारी होते हैं ।” मैंने कहा,—“हाँ आपकी बात बहुत ठीक है, परन्तु स्वराज्य पाने के लिये तंग दिल को बड़ा व्यापक और उदार बनाना होगा । स्वराज्य ‘गूलर’ नहीं, जो मुफ्त में मिलेगा । खान-पान का विधान यह रखिये, कि चौके-फर्श के बजाय टेबल-कुर्सी हो और मुर्गे के शोलप में शाक डाल दो । जिसे इच्छा हो मुर्गी खाये, जिसे इच्छा हो शाक.....”

“चुप ! चुप !! बस, बन्द करो ! घरमें रखो अपना

स्वराज्य अगर अब चूँ भी धोके तो मारे चपतों के चापर हो जाओगे ।” मुझे भगाकर इन बदनसीब हिन्दुओं ने आपने आते हुए “स्वराज्य” को भगा दिया । शान्ति को कनेठी दे दी । मैं उसी दिन समझ गया, कि इनके बुरे नसीब में स्वराज्य का मजा भोगना बदा ही नहीं है । ८० मुझे जिन २२ करोड़ हिन्दुओं की ताकत पर स्वराज लेने की धूत में फूले नहीं समाते, वे २२ करोड़ २२ हजार या २२ लाख कीड़े-मकोड़ों से भी गये-गुजरे हैं । चपत खाने पर बन्दर भी धुइकते हैं, पर ये तो अपनी बैड़जती की मार को बड़ी चटपटी भाषा में दर-न-दर गाते फिरते हैं । सभा के रंग-ढंग से मेरी दिव्य सूफ़ में यह बूझ आयी कि, प्रिय, मिलनसार मुसलमान भाई मेरे प्रस्तावों से सहमत थे, पर ये हिन्दू दिन-रात धरम की ढेकी कूटने वाले संसार प्राप्ति से अनभिज्ञ—चिल्लाने लगे,—“अरे ! यह तो आगाखानी दल का दूत है । धोखे की बातें करता है ।” यद्यपि मेर वृद्ध मस्तक पर धोपदार चुटिया नागिन-सी लोट रही थी, तथापि उस हिन्दू-आनी “साइन-बोर्ड” पर किसी अहमक ने ध्यान न दिया ।

४० करोड़ चीनी, महान् अहिसक बौद्ध के उपासक होते हुए ईश्वर को तो नहीं मानते, पर “बिना माँस की धास रसोई” छूते तक नहीं । सर पर थपथपड़ पड़े, तो पीठ भी सामने कर दो” इस परम नम्र भाव के उपदेशक ईसा के शिष्य, आज नरसंहार यन्त्रों की रचना कर रहे हैं । बात-बात में जालियानवाला बाग रच रहे हैं । फल-स्वरूप आज उदयास्त तक उनका दबदबा फैला हुआ है । उनका भाग्य-भानु अपनी प्रख्यर किरणों से संसार को तपा रहा है । किन्तु ये “भारत-वासी” सोते रहेंगे, पर कुशासन से टास से मरस नहीं होंगे ।

आपनी स्वाधीनता की प्रतिष्ठा के लिये इन्हें जितनी चिन्ता नहीं सताता, उससे कहीं अधिक चिन्ता-जपमाली में हाथ ढालकर-महामृत्युञ्जया "राम-ताङ्क" ५००० रोज जप जाने की—इन्हें खा रही है। जितनी अतुरुता इन्हें देश की दशा पठन-पाठन करने की नहीं है, उसे विशेष "विष्णुसहस्र नाम" "दुर्गा सप्तसती" को नित्य समाप्त करने की है। कहा यारो ! क्या खाक स्वराज्य हो ? अतः ।

इन्हीं कारणों और स्थितियों से प्रेरिति होकर अब मैं साक्षात् भूत भविष्य का बुझकर्ता, उन प्रश्न-कर्ताओं को आपनी बहुमूल्य-अमूल्य-सम्भात प्रदान करता हूँ। जो लोग असहयोगार्थि में कार्फा लल चुनूँ हैं, और स्वराज्य प्राप्ति के फल स्वरूप वे दारोगा, कलकटा, मुनिसफ आदि के शीतल उपादानों से आपने जलं दिन का ठण्डा करना चाहते हैं, वह आपने इस खाम-ख्याला ॥१॥ किसी भड़भूजे के जलते हुए भाष में झोंक दें, क्योंकि स्वराज्य न होगा और न वे दारोगा ही हो जायेगे ।

जिन लोगों ने "तिलक स्वराज्य-फरण" के फर्जी नोट घर में छिपा रखे हैं और स्वराज्य सरकार की अमलदारी में उन्हें मुचाकर पूँजीपति होने की भावी कल्पना में फूजकर कुपा हुए जा रहे हैं, वे बुझकर जी की सम्मति मान और उन नोटों को फौरन से पेश्तर जलाकर खाक कर दें। क्योंकि वर्ष-दो एक के बाद श्रीमती 'गौरमेण्ट आफ इण्डिया' वन महाराज को "खाटे सिक्के" के प्रचारी-व्यवसायी समझ कर बड़े घर का मुलाहिजा करने को भेज देगो और वहीं उनका भली तरह भुगतान हो जायेगा। जो लोग आपने को राजनै-

(३१)

तिक कैदी कहकर स्वराजी कलाक्टर बनने की खुशी में पाग-
लखाने तक जाने को तैयार हैं, वे भूलकर भी स्वप्न में ऐसी
बात मुँह मे न निकालें, नहीं तो यदि श्रीमती सरकार के
कर्ण-छिद्रों में यह बात घुसकर उसके कोगल दिलों पर बैठी,
तो वे महानुभाव थाने के तो नहीं, जेलघरके दारोगा (कैदियों
के मेठ) अवश्य बना दिये जायेंगे ।

आपका—

तिवारी जी ।

टेलीफोन नं०—५

डिक्टर मिस्टर !

आपकी सेवा में मैं ध्याने आम के सुप्रसिद्ध धर्म—आत्मा पं० धर्मतीध केल शास्त्री जी की यह “अपील” प्रकाशनार्थ पठा रहा हूँ—उनकी और लगे हाथों हमारी भी आपसे पुरजोर शिकारिश है कि इसे आप अपने दिल में जल्द और फौरन से पेशतर जगह दें।

“दोहाई धर्मराज की, विसुन भगवान की, और ! कहां सोये हो, हे दीनानाथ ! बापरे ! बाप ! पापियों के पापाचार से दुष्टों के दुराचार से, वेद के पवित्र पावन नामपर शास्त्रों के शुद्ध हवाले दे देकर, ये पाखरखड़ की माया रचने वाले, दंभ की दुनियाँ वसानेवाले, कुकुल्य, दुर्वृत्य, हे भगवान ! खून पानी एक करके, एड़ी का पसीना सिर चढ़ाकर स्थापित, आरोपित भारत-धर्म को एकाएक ले छुबे और हूब रहे हैं। हाय ! हाय ! धर्म की भित्ति काँप रही है, नीचे खोखली हो गयीं, तिसपर वे जर्जरित नीचे प्रतिक्षण इन दुष्टों के बाहुपाश का धक्का खा रही हैं। मिण्टों की देर है, मुहूर्त मात्र में धर्म का ग्राण कबज होना चाहता है और बाबा तुलसीप्रसाद जी तिवारी—नहीं, नहीं, गोसोधामी की बाणी—“मए वर्णसंकर

कलिमाँही” सोलह आने, चौसठ पाई सत्य—सत्य—सत्य
 क्या महासत्य होना चाहता है। हम जैसे इकड़े-दुक्के धर्म-
 प्राण जहर की धूँट पी रहे हैं। जिस प्रकार आज धर्म को
 छीलालेदर हो रही है, वह सातों युग में भी न हुई थी। अब
 मस्जिदों में श्री० ठाकुरजी पधारेंगे और मौलवीमुल्ले “बल्ला
 हो आकबर” की चिल्लापों न मचाकर अब मन्दिरों में, हे—
 भवान ! इन पामरों के चलते—“३०” चिल्लायेंगे। लम्बी
 दाढ़ी कटाकर मोटी चुटिया रखेंगे, १६ अँगुल का जनेऊ
 पहनेंगे और सुथना न पढ़न कर अब बधनऊ धोती धारण
 करेंगे—लटाट पर राग-फटाके लगायेंगे। मौलवी मुल्ला साहब
 न कहाकर अप परिडत जी, शास्त्री जी और शर्मा जी कह-
 लायेंगे। कहो रे बाबा ! इससे धर्म गया या नहीं ? बाप रे
 बाप ! जिनकी काया के स्पर्शमात्र होने से बिना गङ्गा स्नान के
 शरीर घोर अपवित्र रहता है, जिनके बैठने से वहाँ की धरती
 इककीस हाथ तक महाअशुद्ध हो जाती है, वे मेरे कन्धे में
 कन्धा भिड़ाकर चलेंगे। मियाँ सैकुहीन से सत्यब्रत महाराज
 बनकर बब वे, मेरे संग पत्तल बिछाकर खायेंगे, तब कहो रे
 दादा !—भगवान् की सौगन्ध खाकर कहो, उम समय धरम
 को पूँछ किस शास्त्री के थिल में छैटकी रहेगी ? हाय !
 गयी ! और जड़ से गथी ! पवित्र भारत की धर्मगियता,
 धार्मिक रुद्धि, धार्मिक मर्यादा, धार्मिक प्रगति आदि सब
 पाताल की खाई में चली गई। अब क्या है ! वही—“भए
 वर्णसंकर कलिमाँही !” लीपा-पोती करनेवाले मियाँजी को
 बाबाजी बनाकर ही हम लेना नहीं चाहते, भला यह तो
 किसी तरह निभ भी जाता, परन्तु वे तों, हाय रे ! हाय !
 नीचातिनीच पतितातिपतित को भी गले में पवित्र सूत्र

(जनेऊ) देकर एकदम दब्नाटे से हमारी ही रोटी का दाढ़ी-दार या-या यासी कि, ब्राह्मण ही बना देना चाहते हैं । कहिये महाशय गण ! अब वह वर्णाश्रम धर्म, जो कालान्तर से चला आता है, जिसे गौतम ने जान, कणाद् ने प्राण, कपिल ने शरीर, पतृकुलि ने सर्वस्व और वैदव्यासने प्रगाढ़ परिश्रग कर स्थापित किया था, सो धरम रे भाइयो !—हाय रुलाई आती है, उस धरम पर—इन नीचों महाशय, साधारी कहलानेवालों ने, चौका फेर दिया । सीधे-साँदे हिन्दुओं को न समझ है, न बूझ ! बस जैसा नकेला घुमाओ, इन्हे घूमते तनिक भी देर नहीं लगती ! पर वे नहीं समझते, कि वह कर्म-धर्मपर गजब गिराना है । कहिये साहब ! यदि तेली सत्यनारायण का कथा बाँचे, भड़ी के घर जनेऊ मिले, चर्म-कार पुजारी बन बेठे और दुसाध फल, फलाफल सामन-मुहूर्त बतावे, डाम कुरड़ला रचे, ता यह प्राह्णा-समाज, जो प्रहा के मुख से निकला है, गारू चरायेगा—या भाड़ भोकेगा ? अरे बेतमीज के पुतलों ! भगवान् ने जब तुम्हें पृथ्वी पर नीच जाति ही बनाकर पठा दिया है, तो आज तुम क्याँ विधि विवान में टाँगे अड़ाते हो, धर्म का रसातल पठाते हो और साथ साथ हम ईश्वर-पूजित ब्राह्मण को भी सताते हो ?

कहते हैं,—“भगवान् राम ने भिलनी के बेर खाये, निपाद को गले लगायो” तो समझ के पीछे ढंडे लेकर भागनेवालों ! राम ने प्रायश्चित्त-रूप में ‘राजसूय’ यज्ञ किया । बड़े-बड़े दान उपदान किये । राम सा पुरुषार्थ तुममें है ? राम ने तो रावण जैसे वीर्यवान् को नाकों चने चबवाये, ४०० कोस का महा-समुद्र क्षण में पार किया, पितृ-आज्ञा पर अयोध्या जैसे राज्य

को जात मार दी । तुमने कभी एक गिरगिट को भी मारा है ? चार हाथ की चौड़ी नदी भी कभी लाँघी है ? आरे हमड़ी के पंछे तो मरे जाते हो, क्या यज्ञ पूरा करोगे ? राज्य स्थागोगे ? राम तो इश्वर थे, तुम कौन हो ? उनके रचे पुतले । राम तो सामर्थवान थे और तुम हो निरे तिर्यक्यर्य ? नक्काल ! नक्कल—अपने से बड़ों की नक्कल करने पर जानते हो क्या होगा ? वही-वही जो उस मन्दबुद्धि, बगुले का हुआ था, जिसे हंसराज की चाल-ढाल सीखने का शौक चरोंया था और अन्त में न तो हंस की चाल उसे आयी, न अपनी ही याद रही । इसी तरह न तुम हिन्दू ही रहोगे न तुहरु ही ! तुम्हारी दशा ठीक 'न खुगा ही मिला न मिसाले सनम, न इधर के रहे न उधर के रहे' की ही होगी ।

तो ऐया हो ! श्री शास्त्रीजी की भविष्य चिन्ता को समझो, और अन्धेर नगरी में छोपट न मचाओ । यदि युधिष्ठिर का, राम और कृष्ण का राज्य होता तो इस तरह तुम्हारी कदापि न बन आती ।

कहते हो—“मन्दिर दूटते हैं, ग्री-बच्चों की जानें आफत में हैं, हिन्दुओं का सिर काल का नेवाला हो रहा है । यह सब जानते हो क्यों होता है ? देखो ! जरा छूबकर तह में देखो ! आखिर पाप का प्रतिफल पापाचार प्रचार करनेवाले न चक्खेंगे, तो फिर कौन चक्खेगा ? जिस धर्म-देवता की रक्षा, धर्मराज ने धल फाँक-फाँक कर की थी, शिवि ने बांटी-बोटी काटकर की थी और हरिश्चन्द्र ने चारडाल की नौकरी कर की थी, उस पवित्र पावन-धर्मके गले में फाँसी डालकर उसका धम धीटनेवालों का महापाप आखिर पड़ेगा किसके मर्ये ?

इन महापुरुषों की आत्माएँ धर्म की दुर्गति देखकर क्या नहीं बिलबिलायेंगी ? क्या उनका आत्मकलेश; उनके अप्रिविदर्घ हृदय की जवाला तुम्हें न जलायेंगी ? अभी तो और तुरे दिन आयेंगे । अतएव भाइयो ! जरा अकल से खुदा को पहचानो और भारत के धर्म की नैया को झूझने से बचाओ । इसी में हमारा तुम्हारा और देश का उद्धार है । चोलो सनातन-धर्म की जय !”

आशा है कि, धर्म—कर्म की साक्षात् जीवित महामूर्त्ति श्री० शास्त्री जी की “अपील” पर आप लोग अवश्य, अवश्य और अखमार के ध्यान देंगे ।

आपका—
तिवारी जी ।

देलीफोन नं०—६

मेरवान !

आपने राम तो कोई लेखक-बैखक हैं नहीं, पर पूर्वजों की विमल कीर्ति-कोशुदी की महत्वी महामाया से हम आज भी लेखक की तो क्या, पण्डित और साथ 'महाराज' के पुकारे जाते हैं। हमारी यह 'महाराजी' लक्ष्य (पदबी) खास खुदा खाने से मिली है, चाहे हम 'दरिद्र' ही क्यों न हों। 'महाराज' वरायर पुकारे जाएँगे, और हमारी यह उपाधि सूरज-चाँद की तरह सदा देवीप्यमान और ध्रुव नक्षत्र की भाँति अटल है, और रहेगी। और रहे भी क्यों नहीं ! भाईजान, यह तो किसी मानवी आफिस की है नहीं, है खास खुदाई दफतर की। मुझे उम्मीद है, आइन्दा आप भी मुझे 'महाराज' जी ही कह कर पुकारा करेंगे ।

आपको विदित हो या नहीं, जैसे राजा-महाराजाओं के साठ-साला लड़के भी 'कुमार साहेब' और 'बच्चाजी' कहकर पुकारे जाते हैं, तथा धनिक 'लालाओं' के लड़के—१२ पोतों के दादा होकर भी 'बबुआ' ही कहे जाते हैं, वैसे ही हम अपने पितर-पुरखे, गोतम, कणाद, कपिल और याज्ञवल्क्य की कृपा से मूर्खराज होकर भी 'पदिलवजी' ही कहकर पुकारे जाते

हैं। परिष्ठित शब्द 'ब्राह्मण' का पर्याय हो गया है। हम बड़े खेद के साथ लिखते हैं, कि 'हिन्दी शब्द-सागर' के सम्पादक पञ्च महालोकपाल साहित्य-महारथियों ने 'पंडित' शब्द का अर्थ 'विद्वान्' लिखा है। अजी उन्हें तो पंडित माने सीधे-सीधे ब्राह्मण लिखना ही उचित था। परमात्मा जाने; एक नहीं पांच-पांच महारथियों की बुद्धि, परिष्ठित शब्द के अर्थ-लेखन के समय किधर को गश्त लगाने चली गई थी। हाँ किसी भासाने में 'पंडित' माने विद्वान् रहा होगा, भगव आब तो परिष्ठित के निखालिस माने हैं 'ब्राह्मण'। सो मैं इसी निखालिस अर्थ वाला पंडित हूँ, और श्री० सनातन घर्मी की उण्डी छत्रकाया में घलकर तो द बोझ से आब तो चलने-फिरने से भी लाचार हो गया हूँ, और आज द४ वर्ष की उम्र तक 'धन्धा' क्या बला है, परिश्रम किस हौए का नाम है, न जाना, न समझा, किर भा सनातन-घर्मी सुमन्त; मठजन-महृदयों की सुदृढ़ा से दोनों जून दूधिया छानने में किसी दिन भी एक चुल्ल दूध की कमी न हुई। रबड़ी और मलाई तो हमारे घर का कुत्ता 'टिपुआ' सुसरा भी सूँघ-सूँघ कर छोड़ देता है, हम दोनों प्राणी तो मालपुण और रसगुल्ले खाते-खाते अजीज आ गये हैं। भगव—

भाईजान !

इन सारी सुख-सामग्रियों की प्रचुरता होते हुए भी हम सर्वोङ्क सुखी हैं, यह बात नहीं है। हमारी महाराणी (स्त्री) मैथिली महिला इत्न हैं, जिनकी विकट पति-भक्ति कभी-कभी मुझे गहरे सोच-सागर में डुबा मारती है। शास्त्रों का कथन है और आज के उच्च सुन्न सज्जजनों का भी ऐसा ही ख्याल

है कि, जीवन के असद्यामार से आक्रांतजीवन की शान्ति के हेतु कीसी अपने प्रिय के कोमल अङ्ग या आलिङ्गन को अत्यन्त आवश्यकता है, और इस दुःख के रामबाण की पुरस्तिने हैं—त्रियाँ, जिन्हें सहधर्मिणी बनाकर रखा जाता है। नुसखे की उपयोगिता की तहेदिल से ताईद करता हुआ मैं यह नम्र निवेदन करूँगा कि यदि ये रामबाण की जीती-जागती बूटियाँ, तनिक मजे से खरल में घोटकर तैयार की गई हाँ और उनको तुर्शी भली तरह निकाल फेंक गई हों, तब वे बेतक बड़े काम की हैं। नहीं तो ये भजिप्राप्त से भी यथंकर और ताऊर से भी खूँखार हैं ! हमारी मैथिली महारानी के नाजुक दिलों में यह बात काटे की तरह गड़ गड़ है कि मैं फिजूल ही उनका पति परमेश्वर बना, क्योंकि उनकी ओर सुयास्य रमणीनरत्ना के शोहर बनने का एक भी 'कालिफिरेशन' मुझमें नहीं है। इस बात को वे प्रायः एक पति-परायण रमणी की भाँति जपा करती हैं—‘हमने कुछ नामवरी हाँसल न की, केवल जानवरों की तरह अपना पेट पाला, और उन्हीं के प्रान्त की एक सौभास्यवती कन्या, यानी ‘सीताजी के पति रामचन्द्रजी इतना नाम कसा गए कि आज लालों वर्ध गुजरने पर भी और लाख धोने पौँछने पर भी उनका कमाया हुआ ‘नाम’ नहीं मिटता !’ वस्तु, हम इसी कारण उनके पति होने के बिलकुल ‘अनफिट’ हैं। आपलोग तो पढ़े लिखे आदमी हैं। जरा हमारी मैथिल-महाराणी के इस ‘चार्ज’ पर गौर फरमाने की तकलीफ करें। ‘नाम’ और ‘सुयश’ अर्जन की इच्छा किस भक्त्वे को नहीं हो सकती ? मगर जब वैसा सौका हो, जमाना हो और वैसी सुविधा हो। अपने देश की जिन सौभास्यवती

कन्या (सीता) के पति (रामचन्द्र) की उपभा देकर श्रीमती मेरी अकर्मण्यता प्रमाणित कर मुझे पतिपद के अयोग्य बतलाती हैं, उस समय “पिलां कोड़” न बना था, नहीं तो सूर्पनखा के कान-नाक काटते ही फौरन लक्ष्मण और राम, दोनों दफा ३२४ में चालान कर दिये जाते, और जेलखाने की चहारदीवारियों में बैठे-बैठे अच्छी नाम-वरी हासिल करते । दूसरे इन सौभाग्यशीला कन्या (सीता) के पतिदेव के लिये मुफ्त की फौज थीं, न उन्हें रसइ देनी पड़ती थी, न तनखाह । जब भूख लगी तब उनकी “भालु-बद्धरी” फौज जंगलों की राह लेती और “चर-चुर” कर “खा-खू” कर फिर चली आती । तीसरी सबमें वही और जब-रदस्त बात यह थी उनके हाथों मरना बैकृष्णन्प्राप्ति का कारण और उनकी सहायता करना सुदार्दी कार्य समझा जाता था, तो जिस भाग्यवती कन्या के पति-देवता को ऐसी अनेक सुविधाएँ प्राप्त हों, यदि वे कुछ नाम कमा लें तो इसमें किसी के भाग-अभाग का पचड़ा खड़ा नहीं होता । यह ही जमाने की खूबी और आमलोग के समझ की तारीफ । यदि कुछ धर्मात्मा सज्जन गवर्नरों से हुक्म लेकर हमारे हाथों अपने हुंड कटाकर बैकृष्णनगमन के हेतु लालायित हों, या कुछ लोग मेरी मदद करना खुदा का काम समझ लें, तो मैं फौरन से पेश्तर उनके मुण्ड-गाजर मूली की तरह काट केरूँ या किसी राज्य पर बढ़ाई कर प्रलय पर्वन्त अपनी ‘नामधरी’ का भण्डा गाड़ जाऊँ, पर मेरी महारानी मुझे ऐसी ‘फैसिलिटी’ दिलवाने को ग्रस्त नहीं हैं, तो कसम है, आपही कहिये, मैं क्या खाक नाम कमाऊँ ?

खैर जिस सनातनधर्म के बलंद अकबाल से मेरे सारे

कारखाने निहायत बेहतरी से चल रहे हैं, उसी कल्पवृक्ष फूपी श्री सनातन घर्म की धोर सुकृपा से नार्मार्जन का भी स्वर्ण-सुयोग हाथ बाँधे मेरे दरबाजे पर आ घमका। उन दिनों गाँधीजी 'हरिजन'-कार्य के लिये दौरा कर रहे थे। मैंने सोचा, उनका पक्ष लेने में तो अब कुछ घरा नहीं है, क्योंकि अब तो उनके पक्ष बालों की संख्या करोड़ों को लाँध गई है। हरिजनों की वस्तियों में भाङ्ग लगाने और उनके संग सहभोज करने वालों की भी काफी तादाद हो गई और खबर के कागजों में उनकी छवि (फोटो) भा बेहद निकल चुकी, अब इससे 'नाम-वाम' कुछ न होगा। हाँ, अभी उनके विरोधियों की संख्या समुद्र में पाद्यार्थ तुल्य है, इन सवारों में मैं भी जा मिलूँ, तो अलबत्त हेहजों में नाम कमा जाऊँ। बस-बस !! 'समय न चूको चतुर नर, कहत सुकवि जन कूक। चतुरन के सालत हिये समय बूक की हूक।' क्षणों में ये विचार मेरे मस्तिष्क में आए और पलकों में मैं बाजार की ओर लपका। वहाँ चार गज काला कपड़ा खरीदा, और उसे अपनी मैथिलीदेवों के समुद्र करता हुआ बोला—'इसमें एक-एक गजकी चार मंडियाँ बना दो। बस-बस मुँह न तांको, जहाँ तक जल्द हो खत्म करो, देखो मिन्टों में कितना बड़ा नाम हुआ जाता है।' मेरी चढ़ी हुई त्यौरियाँ और बेहद मुस्तैदगों पर मेरी महारानी की अक्ल धास चर रही थी। वे रुकते-रुकते बोलीं—'तो भला मंडीहिलाने और 'नाम' पाने से क्या बास्ता ?'

"तुम्हारी अक्ल में यह बात न अँटेगी, तुम अपना काम करो, देख लेना जब चारों ओर मेरे नामों का ढंका पिट जायगा तब ! मैं ऐसा कहकर बाहर चला आया, और प्रदर्शन की स्कीम सोचने लगा।

कल सुबह ही गाँधी जी मेरे प्राम के स्टेशन पर उतरने वाले थे। मैंने मुहल्ले के चार-पाँच लौडों को फॉमा, और उन्हें रमगुल्ले खिलाने का लोभ देकर तीन भांडियाँ उनके हाथों में और एक ब्वयं अपने हाथ में लेकर स्टेशन पर चल पड़ा। रास्ते में लड़कों को बताता जाता था—“गाँधी लौट जाओ। ‘सनातनधर्म खतरे में’ ‘हिंदुओं जागो’ ये नारे रटाता-रटाता उन्हें स्टेशन लिवा लाया। बाप ने ! यहाँ की भीड़ देखते ही मेरी बुद्धि बम् बोल गई, होश हिरन हो गया, मगर फिर भी साहस का पल्ला न छोड़ा। आज यदि नाम कमाए बगैर लोटा तो फिर दीन-दुनियाँ की तो मुझे उतनी पर्वाह नहीं है, मगर अपनी महारानीकी व्यंग्य-वाणी-वर्षीसे मैं सदाके लिये चापर हो जाऊँगा। अब क्या कुछ करलो। जाते ही घोर कर्कश स्वर से मैं चीख पड़ा—‘गाँधी लौट जाओ।’ लड़कों ने भी साथ दिया। कुछ तो हैंसे, कुछ ने मेरी मजाक बड़ाई; पर कुछ धर्मात्मा सज्जनाने मेरी ओर सहानुभूतिपूर्ण एवम् कृतज्ञतामय लोचनों से निहारा। अब मेरी हिम्मत का फाटक बिल्कुल दो पट्टा खुज गया और लगा जोर-जोर से चिल्लाने। इतने में गाँधीजी की ट्रैन आई, लौड़े हरामजादे ऐन मोके पर दगा दे गये, वे भांडी को फेंक ‘गाँधी की जय’ चिल्लाते स्टेशन की ओर भागे। क्षणभर के लिये तो मैं बिल्कुल टटकी विधवा-सा अनाथता का अनुभव करने लगा, मगर बाह रे मेरी मैथिली महाराणी ! फिर उसके तुकीले शब्द-वाण याद आ गये, और भारिडियाँ अकेले थामकर मैं बेतहाशा होड़ा। गाँधीजी की मोटर उधर से आ रही थी, उसके मड़गार्डका बेतरह धक्का मुझे लगा और मैं बाँसों उधर लुढ़क गया, सर फूट गया, और रक्त

की धारा बह जली । कुछ लोग मेरी ओर दौड़े, मैं तो अचेत-सा हो गया था । सुबह जब मेरी आँखें खुलीं और मुझे होश आया, तो देखा—सैकड़ों लोग मेरी सुश्रुषा में लगे हैं । सनातनधर्म के प्रबल संरक्षकों की लिस्ट में मेरा नाम भी दर्ज हो गया है, और मैं खासा नेता बन बैठा हूँ । शाम होते-होते तारों का एक बड़ा-सा हंडे मेरे सम्मुख लग गया । कोई, 'सनातन-धर्म सभा' का है, तो कोई 'सनातन धर्म-प्राणियों सभिति' का । हजारों टेलीश्राम थे, और उनमें मेरी धर्म-चीरता मेरे धर्मदेवत महाकष्ट सहन की प्रचुर प्रशंसा-गान के अतिरिक्त मेरे आग्रह लाभार्थ ईश्वर से दरबास्त की गई थी । बड़े-बड़े शहरों में लेकर छोटे-छोटे ग्रामों तकमें, मेरे साथ सहानुभूति प्रदर्शनार्थ बड़ी-बड़ी विराट सभाएँ की गईं, और उनके स्वीकृत प्रस्तावोंकी कापी मेरे निकट पठाई गई । पचासों किस्म की मेरी कोटु अखबारों में प्रकाशित हुईं और मेरी सुति बन्दना में कालम के कालम रंग डाले गये । मेरी धाक जग जाने की और नामवर्ण हासिल करने की सब से बड़ी यह धात हुई कि स्वयं गाँधी जी ने भी मेरी चोड़ी के लिये एक तार ढारा दुःख प्रदर्शित किया था । अब तो घर में मेरी खासी तूती खोलने लगी । मैं तो सीता के शौहर से भी बाजी मार ले गया, क्योंकि जब उन्होंने रावण को मारा था, तब उनका चिन्न न तो किसी अखबार में निकला था, न उनके निकट बधाइयों के इतने 'टेलीश्राम' ही पहुँचे थे, और न सम्बादपत्रों में उनकी ऐसी कोई गुण-गाथा ही छपी थी । हमारी देवी हमारी उपादेयता और योग्यता को मान गई ।

भगर साहब !

क्या कहूँ फिर भी यह संसार है, सदा एक-से दिन नहां जाते । न जाने किस मरदूद के पट्टे ने पूने में गांधी जी पर बम फेंक दिया, और इधर हमारी शामत आ गई । तीन-तीन बार घर की तलाशी हुई, और पुलिस के जबान बराबर मेरी हाँजिरी और मेरे आसद-रपत की पुछ-ताछ किया करते हैं । मेरे बम्बन्धो पड़ोसी आदि ने पुलिस की खौफ के मारे मेरे घर आगा-जाना बन्दकर दिया, और-तो-और यजमान विचारे भी-जो खान्दानी पुरोहित का त्याग अपने नाश का कारण समझते हैं, अब लुके-छुपे आते हैं । शौहर की नामवरी का भूखी मेरी देवी भी बहद ठंडी पड़ गई है । हवन की पूर्णहुआत के निमित्त रखे दो खोखल नारियलों को पुलस उठा ले गया है । राम जाने उन नारियलों से वह क्या फिलना निकाल बाहर करेगी ! हमारी तो वही दशा हुई—‘कोख मांगने गए, और मांग भी गँवा आए ।’ क्या हो अच्छा था, इस ‘नाम-बरी’ की बला से दूर, मैं घर बैठ स्वर्ग सुख-भाग रहा था, मेरी इस बात को मेरी देवी भी अब मंजूर फरमाने लगी हैं “पर अब पछिताए होता क्या, जब चिकिया चुग ग गई खेत ।”

आपका—

तिवारी जी ।

टेलीफोन नं० — ५

महाशयजी, मुलाहिजा फरमाइये !

अपने पिछले टेलीफोन में मैं अपने जीवन पर स्वरूप प्रकाश डाल चुका हूँ, इस प्रकार जब मेरी आमदनी रुक गई तो धर में दाल-नमक की नड्डी कोढ़ में खाज की तरह सताने लगी। अर्थोपार्जन के अनेकानेक विचार-बवंधर मेरे स्थूल-बृहत् भवित्व-क्षेत्र में उठे, जी-ही-न्जी में अनेक स्कीमें बनाई विगाड़ी, पर किसी पर मेरा जी न भरा। “खिचड़ फरोशी” की दूकान खोलने से लेकर कपड़े की एक बहुत बड़ी कोठी खोलने तक की बातें सोच ढालीं, पर किसी पर भी मन नहीं भरा। क्या कहूँ, आज-कल तो सारे रोजगारों पर पाला पड़ गया है, सभी अपने-अपने आगे को भीलते हैं, तब मैं क्यों कर कमा लूँगा ! पर बिना कमाए काम चले तो कैसे ?” इस चाण्डाल प्रश्न ने मुझे पूरे ७५ घंटे तक सोने न दिया। ‘बाइ, गोला’ की तरह रह-रहकर यह जालिम सबाल मेरी छाँतिङ्गों को हुमेटने लगा। एक-एक करके सारे प्रचलित रोजगारों पर विहङ्गम दृष्टि ढालकर उनका सिहावलोकन कर गया, मगर सब बैकार और छुआऊ ही साधित हुए। अन्ततः घूम-फिर कर पुनः अपने पैतृक व्यापार पर ही दिल जमा।

सोचा क्या भला हो यदि मैं कथावाचक बन जाऊँ और इसके बनने में संस्कृत ज्ञानादि की जो कठिनाइयाँ थीं, उन्हें बरेली बाले पैर राधेश्याम ने अपना 'राधेसामा रामायण' ईजाद कर खासा सहल और सरल बना दिया, अब हर शख्त जिसे थोड़ा-बहुत भा अक्षर-ज्ञान हो, बड़े मज़ से बा-आसान कथावाचक की पदवी पाकर 'पण्डित जी' कहला सकता है, और अपना घर भी भर सकता है। बस-बस यही रोजगार चोखा-खरा है 'न हरे लगे न फिटकरी—धी यजमान का, लकड़ी-गोयठा भी उनकी ही, बस अपने को तो केवल नमो-नमः सोहाहा (स्वाहा)" भर कर देना ठहरा और पैसे अपटी के सिपुर्द कर रखानेवाशब्द हा जाना।

सो साहब !

क्या बताऊँ "बुझुश्चितं किं न करोति पापम्" भूखा मूल कुछ कर सकता है, बाजार गया और ॥) ५० पर राधेश्याम रामायण खरीद लाया। एक बार तो किसी तरह टांटाकर पढ़ गया। पर उस किताब में, जो भाई "भंगा की गैल में मदार के गीत" की तरह बड़े-बड़े बदूँ-फारसी के लाफज धुमेंडे गये हैं, उनके मारे मेरे लाख सर ठाकने-ठेठाने पर भी भमझ में न आए ! बूढ़ा आदमी—परिष्ठित जी महाराज की पदवी, अब हम जो इननी बही इज्जत लेकर एक साधारण 'भाखा' (भाषा) पुस्तक के शब्दों के अर्थ लोगों से पूछते थे, तो इस बुढ़ीती में जमी-जमाई आबरू की मिट्टी पलीद करें। लेहाजा हमने किसी भक्ति से कुछ पूछना बेकार समझा। हम तो विद्वान् और अधिकारी आदमी थे। जैसे बंगला के विद्वान् रमेशचन्द्र दत्त ने जो लिखा, वही बंगभाषा की शैली करार

दी गई है, उसी तरह हम चाहे जिन शब्दों का जैसा भी अर्थ लगा दें, ठीक अर्थ वही समझा जाएगा । विद्वान् किसी 'शब्द-कोष' या 'लुगत' के खूँटे थोड़े ही बँधा रहता है ? शब्दकोष लाख चिल्लाएँ, फलाँ लफज के माने फलाँ, पर वे चिल्लाते रहें, चिल्लाना उनका काम है, और अर्थ लगाना हमारा । जैसे आजकल के हमारे "छायाचारी" भाइयों ने कविता के यगण, भगण और रगण को रगड़कर फेंक डाका है और नापतोल को जहमत में पूरी फरागत पा ली है । यहाँ तक कि अब तो 'वैयाकरण' को भी, समालोचक सूर मिश्र-बन्धु महाराजगण एक 'वाई (वायु दोष) करण' ही समझते हैं । तब; जब चारों और इस प्रकार 'इनकिलाव' वरपा कर, दिन—दोपहर आजादी का भन्डा आलम में उड़वाया जाता है, तो फिर इस सुसर अर्थ-फर्थ में क्या धरा है, और जब बुर्जुओं ने यह भी फरमा दिया 'शब्दानं अनेकार्थः' तभी तो वेद के 'गणानांत्वा, गणपतिगुं हवामहे' का अर्थ भाई महीधराचार्य कुछ और करते हैं, दयानन्द सरस्वती और, तथा सायनाचार्य कुछ और ही गाते हैं । बस ! हडाओ पैचड़ा, जा समझ में आ गया, अर्थ करता जाऊँगा ।

इस प्रकार चतुर्दिक से छुट्टी पाकर एक दिन मैं अपने ग्राम के बाजारी चौहड़े पर चौकी विछाकर कथा बाँचने बैठ गया । पर फिर कठिनाइ उठ खड़ी हुई, और बड़ी बलिष्ठ । "राधेसाम रामायण" बिना हारमोनियम तबले के नहीं कहा जा सकता, सो एक तो मैं संगीत-ज्ञान में विलक्षण अद्वृता ग्राणी, दूसरे यह बुद्धीती का जगाना, उबला चक्र में फँसा । चौबोस गरड़े पेस भी, जिनसे कि मैंने रामायण खरीदा था, पानो में गये सालम हुए । अब वहाँ अन्धे बाला भजमून हुआ, खीर

तो मीठी है, पर उसे गड़पना बड़ा टेढ़ा है। “राधेभासी रामायण” का कथावाचक बनना तो महज आसान है, पर इसे गा सुनाना हिमालय की चहाँई साबित हुई। घण्टे भर “रेंक” कर चला आया। हाँ, प्रथम घण्टे घडिआल की टन्टन सुनकर कछ बाजार लौड़े ‘प्रसाद’ के लोभ मे एकत्रित हुए थे, जिनसे मैंने परी आवाज में ‘रामचन्द्रकी जय’ बोलवा कर अपने कथा-प्रारम्भ का ‘एडवरटाइजमेण्ट’ तो कर दिया, पर जब मैंने बैठकर कथा बाँचने लगा, तो श्रीता तो क्या, लड़के भी समुरे चलते बने। और तो और, इन शरारती छोकड़ों ने मेरी “ब्यासगाड़ी” के निकट कनपूर ला ला कर भड़भड़ाने शुरू किये। अब कहिये इन मूँजियों को हाँकूँ या कथा बाँचू। झखमार के घर लौटा, दूसरे दिन एक मीठे गले वाले लड़के को छः आने, और एक तबले वाले को ॥) रोज पर मुकर्सा किया। सर्वप्रथम उस लड़के ने अपने मधुर लिलित कण्ठ मे जो गाया।

“जा बजरङ्गी, नाहर जङ्गी, ले नाम श्री० रामजी का”

और तबले वाले ने जो निहायत मरती से ‘तिरकट’ ‘दुकडा’ लगाते ‘बनारसी ठेका’ लगाया कि फिर तो समाँ बँध गई, भेंड की तरह लोग धँस पड़े। अब तनिक मेरा दिल खुश हुआ, अब क्या ५) ८० से कम पैसे आज आरती में न आएगे, ‘प्रसाद’ तो इसके आलावा है।

सैर, साहब गाना समाप्त हुआ, और मैंने इस ‘जा बजरङ्गी, नाहरजङ्गी’ का यो अर्थ किया—

‘भैया हो ! जब रवनवाँ श्रीमती मातु जानकी को हरण करके, ले जाता भया, और उन्हें लङ्का मे बन्द कर दिया, तब

सब बानर लोग जो हैं यो जायकर के, रामकृष्णा तें, बजरङ्गी जो हैं श्री० महावीर जी, उनसे यह बचन बोलते भये 'हे बजरङ्गी, तुम नाहर हो, यानी जैसे 'नाहर' से समय-असमय जल निकाल कर किसान अपने खेत पटावते हैं, और 'नाहर' सदा उनका 'कैलान' करता है, उसी प्रकार हे नाहर महावीरजी तुम 'जङ्गी' यानी जङ्गली जीव हो । अपने पेट से अपना कृष्णा रूपी पानी निकालकर हमलोगों की तपन बुझाओ, यानी तुम कृष्णकोपकारी 'नहर' के समान हम लोगों के लिये उपकारी बनकर सीता का पता लगाओ, जाते हम सब सुखी होयँ, ना तो सुध्रीव मारते-मारते हम लोगों का गोबर निकाल देगा ।'

बच्चे तेरी भली हो, इसीसे कहा है—‘शाहशार’ भाखा में न होना चाहिये, मेरे ये अर्थ सुनकर कितने श्रोता खिलखिला पड़े, बल्कि एक ने कह भी दिया, ‘पंडित जी’ ! नाहर माने ‘पानी वाला नाहर’ नहीं, यह फारसी लफज है, फारसी में ‘नाहर’ सिंह को कहते हैं, और ‘जङ्गी’ माने जङ्गली नहीं योद्धा, ‘जङ्ग’ यानी युद्ध में साहस पूर्वक लड़ने वाले को जङ्गी कहते हैं ।”

परन्तु मैं अपनी बुढ़िमत्ता और अधिकार का पलता क्यों छोड़ने लगा, बोला—‘ये अर्थ तुम्हारे घर लिखे होंगे, तुम्हें मालूम होना चाहिए, हम पंडित हैं, और हम जो कुछ कह रहे हैं, वही ठीक है, और सब गलती-भूठ है । तुम्हें सुनना

हो सुनो, वर्ना घर जाओ, यहाँ व्यास-गांडी है, बाला-बुधा का घर नहीं कि जो जी में आया बक डाला !' हाँ, तो फिर मैंने सपनी गांडी आगे को बढ़ाई—

सज्जनो ! धनुखा टूट गया है । सुनिये आगे क्या कहते हैं ।

‘टूटते ही धनुख के दुष्ट भूप,
कामी अज्ञानी अभिमानी ।
कमवखत, वेसरम, बेहूदे,
आपस में यां बोले बानी’ ।

‘यानी धनुख के टूटते ही दुष्ट भूप नाम शठ राजा, जो मूर्ख अभिमानी नाम ‘धमंडी’ थे । ‘कमवखत’ यानी थोड़ा समय देख कर ‘बेहूदे—’यानी जिनका कोई दूदां नाम अड़ाव रक्षक न था, वे सरम यानी बेलड्ज हो ‘बानी’ नाम थात गोले—

‘पकड़ो बाँधो नृप लोगों को,
लाजिम नहीं रहम शरीरों पर ।
पहले इन्साफ धनुष पर था,
इन्साफ है अब शमशीरों पर ।

तब जो है सो भया हो, ‘नृप’ नाम राजा लोग कहते भये, का कहते भये, का कहते भये कि, सब को पकड़ कर बाँध लो, इन ‘शरीरों’ नाम इनकी वेह पर रहम यानी

दया मत करो, पहले इन्साफ तो धनुषा पर था, अब 'राम'—नाम बराबर और 'शीरों' नाम शीश, मस्तक, अर्थात् अब इन्साफ समसीरों, यानी बराबर सबके शिरों पर है। फिर वे खल राजा कहते हैं।

"जन पर कर कुर्चा जाँ शेरों, जङ्गे मैदाँ में आजाओ"

यानी 'जन' नाम आदमी 'कुर्चा, नाम 'कुंवाँ' 'जाँ शेरों' नाम जाओ शेरों 'जङ्गे मैदाँ' नाम वे मुर्चा का मैदा यानी आँटा, तात्पर्य—हे जन, आदमी लोग तुम लोग कुर्चे पर जाकर उम्दा आँटा खाकर और बलिष्ठ सिंहवत् बन कर जाओ और बल पूर्वक सीता का छान लो।'

तब—'

अभी आगे बढ़ना ही चाहता था कि श्रोतामण्डल में भगद्दर मच गई, सबके सब ठहाक मारकर उठ खड़े हो गये। 'बठिए भक्त वृन्दा ! अभी और उत्तम तथा राचक कथा आगे है। अधूरी कथा छाइ कर जाना अर्धमौ है' चिल्कातेन-चिल्काते मेरा मुँह बैठ गया, पर मेरा सुने उसको बता। तब उस छोकड़े को ललकारा—गाना, नहीं तो देख, सब गुड़ गाबर हुआ जाता है। लड़का गाने लगा, लोगों के पाँव रुक गये। इतने में एक श्रोता ने कहा—

—परिणत जी महाराज ! कथा से उत्तम तो इस लड़के का गाना हो हागा, बलिक केवल मात्र इसे ही गवाया कीजिये।

अच्छी आमदनी होगी, आपके इस रेक्ने और अर्थ के अनर्थ करने में न कुछ दम-खम है और न मजेदारी है।

गाना समाप्त होते ही लोग फिर भाग चले। मैं भी पोथो-पत्रा बाँध-बूँधकर घर लौटा, पर क्या भाई, मैं ब्राह्मण हो कर लौड़ों का नाच कराता चलूँ और मिशसियों की तरह इसकी कमाई से पेट पालूँ ? हाय रे कलियुग ! ठीक है अब नचमुच—

‘पुण्य गयो पाताल, धर्म धसि गयो धरनि मे’ रे भाई !

आपका—

तिघारी जी ।

टेलीफोन नं०—८

हाँ तो—

होली आई और निकल गई, इसी तरह कितनी होलियाँ आईं और चली गईं और आइन्दा भी हसी तरह, आती-जाती रहेंगी। इसी प्रकार इस साल सआठ भी चल बसे, और कमला देवी भी, और न जाने कितने रत्न आये, गये। यही तो संसार है, इसकी चलती चक्की सुसरी पल मान्न भी सब की साँस नहीं लेती। आदिकाल से जो चली, अब तक चलती रही, और चलती ही जायगी। सो भाई मेरे, इसी पर सब करना है—“तेरा तुम्हारो सौपता क्या लागे हैं भोर” हाँ तुमने दिया, कुछ काल के सहवास संगत से हमारे उसके बीच एक नाता जरूर कायम हो चला या पर वह नाता तुमने तोड़ दिया, यह तुम्हारे लिए महज तफरीह की बात हो सकती है, क्योंकि तुम्हें उसकी नश्वरता मालूम है, जैसे बच्चों के बालू की दीवार की हस्ती हम जानते हैं, पर बच्चे उसी दीवार को तोड़ देने से बेताब हो चिलख पड़ते हैं, बूढ़े हँसते हैं—उनकी नादानी पर। इसलिये तुम हमारे रोने पर हँस लो, क्योंकि तुम जानी हो, पर हम अपनी उसी बालू की दीवार को सर्वस्व समझे।

बैठे थे । सो तुमने उसे बर्बाद कर दिया । अच्छा किया, पर हम रोयेंगे, चीखेंगे और अपनी आहों से तुम्हारे आकाश को फाड़ डालेंगे । क्यों ? क्योंकि अब हमारे सब्र की सिफ यही एक पूँजी है—“आह हाय और बफ् ।”

ना मालूम किस भनहूस ने खुदा सलामत को गह अक्क या मशवरा दिया कि—“बनाया करो और बिगाड़ा करो ।” औरे भले आदमी ! तुमसे कहा किसने कि कुछ ननाओ । तुमने तो स्वयं अपने हृदय की भावुक प्रेरणा मे इतनी बड़ी विश्व-कविता रच डाली । खैर ! साहब रच डाली, अच्छा किया; पर उसे बिगाड़ा क्यों ? यह कौन सी भलभनसाहत आपने की ? पर सच तो गह है कि, भाई ! खुदामिया और परमेसर पाँडे, ठहरे यिलकुल आजाद आदमी, प्रत्येक नियन्त्रणों और हुक्मतों से एकदम फारिंग । न उन पर किसी का शामन है न जोर दबाव । ‘परम स्वतन्त्र न मिर पर कोई, भावै मनहि करहु तुम सोई’ वाला मजमून है । तब ऐसी हालत में हम उनकी दीनहीन प्रजा जो आठो गाँठ विहीन और साधनहीन हैं, सिवा ‘आह, हे’ कह लेने के और कोई बूत ही नहीं रखते । तो भाई मेरे, जिस चीज पर अपना कोई वश नहीं, अखितयार नहीं, उम के लिये सोच भी बृथा ही है और यह असह संतोष कलेजे पर पहाड़ रखकर घारण करना ही पड़ेगा ।

सच पूँछो तो यह दुनियाँ ही एक डिल्लगी है, और इनके सारे कार्य-कलाप एक भजेदार कामिक !—सुनो ! हमारे मुहल्ले में एक मालिन की छोकरी थी और ब्रह्मा ने उसे कुछ सौन्दर्य भी दिया था । गोरी शक्ति, भरा हुआ मुखङ्गा, बड़ी-सी आँखें, और चलती थी तो सौ-सौ बल खाकर ।

इस पर गुहल्ले के कुछ मनचहो लौड़ों ने उसे धूर-धूर के और उसे देख—‘आह, हाय—’ की ‘आवाजे’ लगा-लगाकर उसे और भी बेतरह रूपगरिता बना दिया था । वह समझ बैठी थी, रम्भा और रति के बाद कोई चीज यदि त्वय से उतरी, तो मैं । अब उसके नवरों का यह हाल था कि जब चलती थी तो जमीन से बालिस्त भर उसके पाँव ऊँचे ही रहते । एक तो तीतलौकी आप ही तीती थी दूसरे यारों ने अपनी ‘हाय-बाजी’ और बग्बान-सराह से उसे नीम की डाल पर चढ़ा दिया । क्या बताऊँ, उस छोटी की सब निशाली चाल और अजीब रङ्ग-ढङ्ग हो गये । थी तो अभी वह सोलह-सत्रह माल की, पर अपने हाव-माव में ‘बनारस बाली’ को भी मत देने लगी ।

उसके रूप का यह अखण्ड गर्व तो हम कलेजा थमे देखते रहे, मगर उस तफरीहबाज—जो भगवान, बुद्ध या गॉड (God) के नाम से गशहूर है, से न देखा गया । अभी बेचारी का दिल अपने रूप-स्रोत और अपने चहरों की, आह हाय’ की चीख से भली तरह भी न पाया था कि सु-श्री० महामहिम गन्धर्ववाहिनी भवानी ने अपने ‘कुल-पावर’ से उसके रूप पर छापा डाल दिया । तीन भांड की लम्बी मियाद के बाद जब वह खाट से उठी, तो सब से पहले उसने झट-पट हाथ में आइना सँभाला और लोगोंके दिलोंपर डाँका डालने-वाले अपने रूप को देखा । पर हाय, उसपर तो कब से शीतला भवानी डाँका डाल चुकी थी । सारा मुखङ्गा छनौटे-और चालनकी तरह छेद-छेद हो गया था जैसे दीमक चर गये हों । सौन्दर्य का तो कहीं पता नहीं । उसकी जगह थी अब एक अजीब धिनौनी सूरत । बेचारीका लदा-लदाया जहाज बड़े

बेमौके मारा गया, इस भरी जबानीमें। आपने को देखती थी, और सर पर दुहत्थडे मारा करती थी, इसी बीच उस भजाकिये भद्रापद्मो ने एक और शिंगफा छोड़ा। उसे हिटी-रिया, हो गई और वह 'पगला' गई। अब वह भाङ्ह लेकर दर-दर मारी-मारी चलती है और भगवान को गाली देती फिरती है। जहाँ कहीं भी वह जाती है भन्दर-कुवाँ या पोखर देखती है, फटपट उसपर भाङ्हओं की वर्षा करती हुई बड़बड़ाने लगती है—'आरे भगवनवाँ नतिआ, तेरी सूरत पर सौ भाङ्ह।' पता नहीं, उसकी यह मार उसके 'भगवनवाँ नतिआ' की पीठ पर पड़ती है, या मुँह पर अथवा उन निर्जीव मन्दिर, पोखर के पोखरे पर, किन्तु लोग उसे देखकर खुब कहकहे लगाते हैं।

सच पूछो तो भाई, भगवान की यह शरारत खासी दिल्लियी नहीं तो क्या है ? बनाया, संवारा, और सजाया, इस तरह की दुनियाँ में एक तहलकासा मच गया, और बिगाड़ा, बर्बाद किया यों कि दुनियाँ वालों को मनोरञ्जन का एक मसाला ही भिल गया। सो भाई मेरे खुदामियों की इसप्रकार की दिल्लियाँ इस संसार में रोजमर्री लाखों की ताथदाद में हुआ करती हैं। पर इसकी फरियाद कहाँ ? क्योंकि वे तो—

"परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई"

वाले एक अनियन्त्रित शरोफ शैतान हैं।

आपका—
तिवारीजी—

टेलीफोन नं०—६

अजी साहब !

इस सुधार के घोर काल में क्या २ गुल खिले रहे हैं। हमारी तो तमीज की तमाम हो जाती है। मालूम होता है हमारे “रिफार्मर” जोग हिन्दुस्तान को खासा इङ्लिस्तान ही बना कर छोड़े गे। अभी बैठे विठाए कुछ पढ़े लिखे अवाशगदों ने जिनके सरपर “सुधार” का जुनून औबीस घण्टे ढंड बैठक किया करता है, पक सभा रच डाली, बड़े जोरो शार से विज्ञापन-बाजियाँ हुईं, शायद किन्हीं देश विदेश की विकट परिव्राजिका महोदया “देवी जी” की वक्तृता होने वाली थी। हमारे छोटे से गांवमें एक खास तहलकासा भच गया और दिहाती देवियों के लिये यह “सुसमचार” खासा समालोचना का कारण बन गया—“भला इजारों हजार मर्दों के बीच जनाना “लीचड़” देगी ! राम ! राम !! सचमुच भठ्युग आ गया !”

मैं बाहर बैठके में अपने यजमानों के आगमन की प्रतीक्षा आँखें चिछाए, पोथी पत्रा फैलाये बैठा था कि, कुल तीन मिनट में तीस बार हमारी महाराणी किवाड़ के पल्लों को भढ़भढ़ो कर हमारे “काल” का टेलीफोन दे गई। माजरा क्या है जो आज हमारी महाराणी हमारे दर्शनों के हेतु इस

कदर “लैला” सी बेकरार और बेजार हैं ? आखिर इस शरीर मे कोई अपराध तो न बन पड़ा, या कोई शैतान की ओलाह फेरीबाला हगारे पर चबाने के लिये देवी जी को कोई भक्ति म साझी या बौछी, जमार तो न दिखला गया ? अगर यह घोर अनर्थ हुआ तो बस चारभुजा वाले चकधारी ही हमारी रक्षा करें, क्योंकि अपने पास तो एक फूटी चित्ती भी अटी मे रखने को नहीं है ।

इसी द्विविधा के चक्कर मे पीसता, जब—महाराणी की ही गणनामुसार, वे, एक बीम और ग्यारह बार पहले पीट गईं, तो भगवान का सुमरन करता मै उठा—हे भक्त प्रह्लाद के रक्षा कारी, गोवधन धारी हमारी खैरियत आप ही के चारो हाथों है महाप्रभो !” भीतर गया. महाराणी जी अंगन मे खड़ी खड़ी हमारी प्रतीक्षा कर रही थीं। वे मुझे देखते ही बड़े बछाह से हँसी, पर इधर अपने राम के दिल पर जर्मन का तोप छूट गया क्योंकि मैंने समझा यह हास्य का गधुर-प्रतिदान बजह से खाली नहीं है। वह बोलीं—अजी कुछ सुने ?

मै—कुछ सकपकाया सा बोला —न; न ! नहीं तो; क्या ?
वे—तुमने नहीं सुना, बड़ा तब्बजुब !

मै—अरे भाई ऐसी कौन सी बड़ी बात इस दुनियाँ के पर्दे पर गुजर गई या गुजरेगी, जिसे सुनना सबको उसी तरह कर्ज है, जैसे नंगे बदन न रहना ।

वे—तुम तो सिर्फ भंग की तरंग मे आठोयाम छूटते-उत्तराते रहते हो, तुम्हें दीन दुनियाँ का क्या पता ?

मै—दीन दुनियाँ का पता जब बड़े “रीखेसर” और

“ब्रह्मेश्वर” तक न जान सके तो मैं क्या जानूँ ? दीन-दुनियाँ^१ का पता—दाल की नमक, और घर का मिल-बट्टा नहीं है। जहाँ रक्खा, जहाँ नजर फेरी भट्ट पता पा गये। इसका पता पाने के लिये तो अनेक जग्हाओं की बड़ी कठिन-कठिन तपस्याओं की जरूरत है।

वे—फिर बकने लगे न धंड-धंड, ! इसी हत्यारी भंग ने तो घर को भाड़ में भाँक दिया !

मैं—तनिक आँखे मींचकर धवराया हुआ बोला—क्यों, इस अमय हम किसके घर में खड़े हैं, क्या यह घर हमारा नहीं है ?

वे—फिर बनने लगे; तमाशा मत करो मेरे सामने ?

मैं—मैं तमाशावाला तो नहीं हूँ, चूँकि आप के बाप एक धोर महायोग्य पण्डित थे, अतः वे अपनी सुचतुर सुपुत्री की शादी एक तमाशेवाले के साथ कहापि नहीं करते ।

वे—देखो गालियाँ मत बको। पहले सुनो जो मैं कहती हूँ।

मैं—हाँ, सहर्ष कहिये, मैं एक जिज्ञासु और सुवोध—ओता तथा परम आज्ञाकारी सेवक की भाँति सुन रहा हूँ।

वे—बूढ़े हुए पर दिल का चुलबुलापन न मिटा—

मैं—बीच ही मैं—‘अच्छा, उपदेश’ नम्बर बन हुआ ! दूसरा क्या है—?

वे—न मानोगे, मुझे कहने न दोगे ?

मैं—मैं सिर्फ सुनता रहूँ, “हाँ” “हूँ” कुछ न बोलूँ, और न कुछ दाद ही दूँ ?

वे—हाँ ।

मैं—अच्छा, कहिये, मैं विलकुल गूँगा बन गया !

वे—पर वहरा भी लगेहाथों न बन जाना ।

मैं—गूँगे तो वहरे होते ही हैं, जब आपने मुझे “गूँगा”
बने रहने का आर्द्धर कर दिया, तो खमखा मैं “बहरा” बन
ही जाऊँगा ।

वे—देखो, मैं तुम्हें हाथ जोड़ती हूँ, कुपाकर पहंचे मेरी
सब सुन लो तब जितना जी चाहे मजाक करते रहना ।

मैं—अच्छा, अच्छा, कहिये ।

वे—अच्छा आज किन्हीं स्त्री का यहाँ ‘लीचढ़’ होगा ?

अब मेरे जान में जान आई । या मेरे मौला, तुम दृधो
न्हावो पूतो फलो, कि कैकंथी की तरह मेरी महाराणीका मत
फेर दिया । आपकी कुछ माँग नहीं है, सिर्फ उसी स्त्री व्याख्याता
की सभा-वाली बात की जिज्ञासा है । जैसा मेरे शिर
से किसी ने मंदरचल उतार लिया, मैं परम प्रसन्न हो बोला—
हाँ, एक स्त्री देवी के व्याख्यान की बात तो मैंने भी सुनी है,
और शायद उनका व्याख्यान भी आज ही होगा, बड़ी संगत
के घर्षणशाले मैं ।

वे—उसमें स्त्रियाँ भी जाएँगी ?

मैं—हाँ जाएँगी, पर वही जो पर्दा न रखती हों ।

वे—तो उस सभा में पुरुष भी जाएँगे ।

मैं—हाँ ।

वे—तब भला पुरुषों के बीच औरत बेपर्दे होकर कैसे
जाएगी, भला औरतें ही औरतें रहतीं तो एक बात भी थी ।

मैं—तो पर्दी तोड़ना किससे है ? औरतों से थोड़े ! अरे उसे तो पुरुषों से ही तोड़ना है ।

वे—मैं भी जाना चाहती थी, जरा देखती हजारों मर्दों के बीच औरत कैसे निडर होकर बोलती है, पर यह वेपर्दी बाला बखेड़ा तो बड़ा अड़ंगा है ।

मैं—अड़ंगा क्या है, अगर तुम ‘वेपर्द’ जाओगी तो तुम्हें कोई नोंच थोड़े लेगा ।

वे—चुप भी रहो इतने मर्दुओं में जनाना मुँह खोले वेशर्म सी जाए ! राम ! राम !!

मैं—तो न जाओ ।

वे—हाँ नहीं जाऊँगी, मैं बाज आई ऐसी वेशर्मी करने और लिंगचड़ी सुनने से ।

मैं—मैंने सुना है जो औरतें वैसे ही “आर्थीडाक्स” (कट्टर-पंथी) हैं, उनके लिये पर्दे का भी प्रबन्ध हुआ है ।

वे—प्रसन्न हो बोलीं—तब तो बड़ा ठोक है, क्यों मैं जाऊँगी तो ?

मैं—हाँ, हाँ, जरूर जाओ, भला उपदेश और शिक्षा-शब्दण में क्या रोक टोक ? और अब तो रोक-टोक आज्ञा-बाज्ञा का जमाना हिन्दुस्तान से भी लादकर यूरोप की “टेम्प्ल” जहाँ में भसाया जा रहा है, और सारे आलम में आजादी का “भुघुक” बजवाया जा रहा है ।

यद्यपि हमारा-प्राम एक साधारण सा कृषकों का प्राम है, परन्तु भभा में काफी स्त्री-पुरुषों की भीड़ थी । कट्टर-पंथिनी मूर्खा-महिलाओं के लिये पर्दे का भी प्रबन्ध था । लेकचरानी महो-

दया एक ऊँचे मंचपर, जिसपर एक निहायत नफीस कालीन विल्ली थी, मशानद के सहारे उठड़ी कोई 'इङ्गलिश पेपर' पढ़ रही थी। निकट ही मंच के नीचे हमारे ग्राम के बे अवारा-गर्व लोकहे जो इस "महासभा" के प्रबन्धक, प्राण थे, बैठे थे, और समागम सज्जनों का यथोचित स्वागत, सत्तार कर रहे थे। द्याख्याता महोदया मुश्किल से आमी अपने "घोड़पत्व" को समाप्त कर चुकी होंगी। गोरी सा छरहारी काया, जिसमें दिपटा एक बड़े बारीक कपड़े की चोड़ी किनारी की साढ़ी, डब्बल कफ की कमीज, किनारे से काढ़ी हुई माँग, आँखों पर बड़े प्रेम का चश्मा, और पीठ पर लाटती हुई लम्बी लट ! द्याख्याता महोदया का छावि और उसकी सजावट बड़ी ही आकर्षिणीय थी। दरियापत करने पर मालूम हुआ, आप इस मुख्य मुल्क की महामूर्ख महिलाओं के उद्धार, कल्याण का महाब्रत धारण कर, ग्राम-ग्राम और नगर-नगर अपने मिशन का प्रचार कर रही हैं। आप कलकत्ता कालेज की बी० ए० पास सुशिक्षिता और चिरकुमारी हैं।

अहा ! धन्य हैं आप जो अपनी गिरी जाति-स्त्री की मंगल कामना में निमध्य हो निश्चिदिन नगर-नगर मारी फिरती हैं और "चिर-कौमार्य" का धार कठिन तपोजीवन विता रही हैं। हमारे शास्त्रों में शंकर जी के बड़े सुपुत्र बबुआ "घड़ानन" तथा "भीष्म" के "चिर-कौमार्य" का बल्लेख पाया जाता है, पर उन्होंने लोक-कल्याण का पुण्य प्रेरणा से "कौमार्य" ब्रत नहीं धारण किया था। कार्तिक बेचारे ने तो अपने आप शिवजी, के इस आन्याय पर कि उन्होंने "ऋद्धि सिद्धि" नामी दोनों ही सुमुखियों को अपने लाडले गयेश का दे दिया और उन्हें एक भी न दिया, अपने द्याह के इस व्याघात से बिहूल

हो चिरकौमार्य को ही आपना लिया । और “भीष्म” ने अपने वाप के व्याह के हेतु अपना व्याह वाधा स्वरूप जानकर “चिर-कौमार्य” को गले लगाया । इन दोनों “चिर-कौमार्य” ब्रतियों ने अपने-अपने निजी स्वार्थ के हेतु इस कठिन ब्रत को आपनाया । और स्त्रियाँ तो उस जमाने की इतनी निर्बल, शक्तिहीन थीं कि वे इस “घोर-ब्रत” के पास भी मारं भय के नहीं फटकीं ।

परन्तु यह देवी जी तो “कातिंक” तथा “भीष्म” से बाँसों ऊपर चढ़ गईं, क्योंकि इन्होंने अपने किसी स्नेह व्याधात की चिहल चोट में, अथवा पिण्ड-उपकार के आवेश में इस चिर-कौमार्य ब्रत को नहीं अपनाया, बल्कि विशुद्ध लोक सेवा का घोर प्रण्य-पूत महाप्रेरणा से ही इस कठोर ब्रत को सहर्ष गले लगाया । धन्य हैं आप !

—“आख्याह ! आइये तिवारी जी, पधारिये-पधारिये । हमें आप की बड़ी प्रतिक्षा थी, क्योंकि आप ही तो इस ग्राम के “जित्राइल फरिश्ता” हैं, जो इस छोटे से ग्राम की सूचना अपने “टेलीफोन” के चौंगे से दूर-दूर तक पठाते हैं ।” उन खागतकारी छोकड़ों ने शिष्टाचार का स्वांग बनाते हुए कहा । मैं भी भाई बैठ गया ।

एक सज्जन समापति चुने गये और “कार्यारम्भ” हो गया ।

तालियों की लावड़तोड़ “तड़तड़ाहट” के बीच बड़े भरे जोश में व्याख्याता महोदया भाषण देने वाली, और बोलने लगी—‘सज्जनों और बहनो !’

आज इस देश में जैसी अधोगति तथा घोर दुर्गति हमारी नारी जाति की है वैसी दुर्दशा तो शायद शूकरियों, और कूकरियों को भी नहीं होती होगी । पुरुषों ने हमें वेदाम का गुलाम वेजुवान की पुतली समझकर, हमें मनमाना आपने उपयोग में लाया । उन्होंने हमें एक बड़ा खुँखार जानवर समझा और हमें घर के बक्सों में बन्द कर दिया । उन्हें हमारी नीयत पर, हमारे आचरण पर विश्वास नहीं, पर आप सो घरों की टट्टी टटोलते फिरते हैं । इन्होंने हमें आदमी नहीं बल्कि एक वेदिता का जानवर समझा, जिसके पास न अङ्ग है, न मानवता ! और हमारे ऊपर नित्य जये मनचाही अत्याचार किया । पर; बहनो ! अब वह समय नहीं रहा कि हम किसी हृदय-हीन पुरुष जाति को पत्नी के खुँटे में बँधी-बँधी पिसती रहें, और पति नामधारी पुरुष-पशु हमारी पीठ और सर को अपने सोटे का कीड़ास्थल बनाये रहे ।

बहनो ! तुम शक्ति हो, देवी हो, दुर्गा हो—अपने में ताकत लाओ और ऐसे पशु-पुरुषों को फौरन “तलाक” दे दो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा । इस मंगलकारी “तलाक” प्रथा को अपने इस महामूर्ख महादेश में प्रचलित, प्रतिष्ठापित करने के हेतु हमारी कुछ पढ़ी जिल्ली सुयोग्य बहनें तथा कुछ सद-विवेकी पुरुष प्रयत्नशील हैं तथा सरकार का भी ध्यान इस और आकर्षित करने की चेष्टा हो रही है । पर आप याद रखें पूर्णरूप से लोकमत जागृत हुये बिना इस कठिन किन्तु कल्याचारी कार्य-साधन में हम समर्थ नहीं हो सकतीं । अतएव आप सब बहनों तथा समस्त स्त्री द्वैषी पुरुषों से मेरा अन्तिम निवेदन है कि वे हिन्दुस्तान में भी “तलाक” प्रथा जारी करने के लिये जी जान से विकट आनंदोलन करें,

तभी इस पतित देश का, पतित नारी जाति का उद्धार, निस्तार निश्चय है। वर्ना, समझ रखो आजीवन इन पति-अत्याचारियों की आँधी में विलगिलाती रहोगी। 'इत्यलम्'

"चाह ! बाह !!" नारे के साथ ही फिर तालियाँ पिटीं। पर माहव गुफ्फसे न रहा गया ! मैंने सभापति जी से निवेदन किया कि यह मेवक भी कृष्ण प्रार्थना करना चाह रहा है। सभापति जी बड़े उदार थे। उन्होंने मुझे आज्ञा दे दी, और अब मैं भी खोलने के लिये उस मंच पर जा खड़ा हुआ।

सभापति जी ने कहा—ध्यान रखियेगा, आप इस ध्यान्यान के विरोध में एक शब्द भी नहीं उगल सकते।

मैंने उन्हें आश्वासन देकर कहना शुरू किया—

"सुमरी हुई देवियो, एवम् सुधार प्रिय देवताओ !

हम भी इस बात को बालिश भर मुख फोड़ के और दिल का पूरा फाटक खोलकर समर्थन करते हैं कि पुरुषों ने देवियों को अपने अत्याचार की चक्की में 'चना' की तरह दल दिया। और उनके इस घोर अनर्थ का घोर प्रतिकार अवश्य होना चाहिए। काती मंडियाँ लेकर हमें भी कौंसिल के दरवाजे तक जाने के हेतु कटिबद्ध ही समझिए। किन्तु एक बड़ी शंका इस कूदानग्रज को यह सत्ता रही है कि "तलाक" देने से तो न "बीबी"—पक्ष; न "मियाँ" पक्ष, किसी का कल्याण न होगा। क्योंकि इस "तलाक" का ध्येय है सुधार तो इससे सुधार तो क्या होगा, अलिक और दोनों आजाद हो-होकर मनमानी घरजानी करने लग जाएंगे, औरतें एक मर्द को "तलाक" देकर दूसरे मर्द के गले लगेंगी और मर्दुएं एक "बीबा" को "तलाक" देकर

दूसरी बीबी के पहले पकड़े गे । इससे समाज में सिवा दुराचार प्रचार के कुछ फायदा न होगा, अतः प्रयत्न यह होना चाहिये कि पुरुषों के अत्याचार सदा के लिये इसप्रकार बन्द हो जाएं जिसप्रकार हमारे लिये स्वराज्य मन्दिर का फाटक बद है । यह कैसे होगा; सेवक आज्ञा करता है—

जिन पुरुषों के आचरण अच्छे न हों और वे अपनी देखियों को अँधेरी रात में या दिन की जलती दोपहरी में छोड़कर किसी गैर की टाईयों टटोलते चलें, और जब वे घर आयें तो उन्हें “तलाक” दंकर परित्याग करने के बजाय एक तेज छुड़े से उनकी नासकि का अम्र भाग काट लिया जाए । इससे लाभ यह होगा कि अब्बल तो वे महा-कुरुप हो जायेंगे, कोई औरत उन्हें पूछेगी ही नहां, दायरम उनकी इन्द्रिय लोलुपता का यह चौबसी घन्टे उनके मुख पर लगा—“विज्ञापन” उन्हें लागा में लज्जित अपमानित करता रहेगा । सभी उन्हें शैतान समझ जाएंगे, और अपने दरवाजे तक उन्हें न फटकने देंगे ।

हे भारत की अद्याशक्ति की पुज्जीभूत मंहान्देखियो, दुर्द-मनीय दुर्गाओं तथा विकट कालिया ! इतमी शक्ति अपने में लाओ, फिर तो बेड़ा पार हा पार है । “नाक काटने” की सिर्फ़ छे मास जेल का सजा है, आपके इस छे मास की कुल यम-यातना नहीं-नहीं, तपस्या से सारा बख़ड़ा आपही तय हो जायगा । न किसी आनंदालन की फिर आवश्यकता होगी, न काउन्सिलों के किवाड़ पीटने की ।

सिंहचाहिनी की प्रचंड पुत्रियो ! छे मास छे दिन में कट जाएंगे । अपने चहार और कुशल के लिये आदमी नाना

उद्यम करता है । साहस करो ! आगे बढ़ो ! काटो नाक
इन नामाकूल नालायक पतियों की । फिर देखो यह किस-
प्रकार पालतू पिलते बन जाते हैं । बस जशसा, महज जरा सा
ताकत अपने में ला-दो, फिर सब फंभट शान्त और सदा के
लिये । हमारा तो आप से यही प्रस्ताव है ।”

इसी समय सभा में हुल्लू हुल्लू मच गया । “नहीं-नहीं यह
प्रस्ताव बड़ा खतरनाक है, यह नहीं हानि का ।”

क्या बताऊँ ये बेवकूफ हिन्दुस्तानी कौवे की नाई “काँव-
काँध” करते भग खड़े हुए । ऐसा सुन्दर सुधारक और प्रबल
हितकारक “प्रस्ताव” पास होते र बच गया । अमाघ्य !

आपका—
मि० तिवारी ।

टेलीफोन नं०—१०

गौर फरमाइये—

ब्रह्मा बाबा की इस आगम चातुरी, अथाह बुद्धिमत्ता की दाद हिये बगैर मैं नहीं मान सकता, कि उन्होंने जितनी भी गोपदियाँ बनाईँ; जितनी भी सूरतें-मूरतें रचाँ, एक दूसरे से विलकुल मिलन—और मौलिक भिन्न ! दुनियाँ के किसी बड़े मे बड़े इन्जीनिअर और चित्रकार के बाप की भी यह बुत नहीं कि वह बनावे तो सिर्फ पक्ष ही अकार-प्रकार की चीज़ और वह एक दूसरी में ब्रह्मा सी मौलिक भिन्नता भर दे। अवश्य न अवश्य उसकी कृतियों में कुछ न कुछ समता आकर ही रहेगी, चाहे वह लाल अपनी नाक रगड़ता रहे।

ब्रह्मा बाबा की यह विशाल विचित्र कृतियाँ पृथ्वी के पर्वे पर चीटियों की तरह रेंगती उनकी अद्भुत कारीगरी का पता दे रही हैं। उनकी इन्हीं कृतियों में से एक—मिर्फ एक ! एक हिन हमारे भोपड़े पर पधारी। वह साहबी पोशाक से लैस, विदेशीय वेषभूषा से लकड़क, बाबा की कलाकृति हमारी चौकी पर थौस गयी। इन नवागत सज्जन की अवस्था अभी २०-२२ साल की होगी। इन्होंने हाथ से “टोप” उठाकर मेरी

आध्यर्थना की, फिर पूछा—पं० तिरकोल तिवारी तो आप ही का शुभ नाम है !

मैं भी विनयशीलता और नम्रता का पल्ला पकड़े दाँत निपोर कर बोला जी हाँ सेवक ही का शुभ नहीं अशुभ नाम है—क्योंकि “तिरकोल” एक साधारण बनस्पति है, और उसका सेव, अंगूर, अनार, नासपातो के समक्ष काई अस्तित्व नहीं ।

वे तनिक धियेटर के असफल जोकर की भाँति हँसने की लकड़ करते हुए बोले—हैं, हैं, हैं, यह आपकी महता है जो अपनी तुच्छता इस प्रकार प्रकट करते हैं । मैंने तो आपकी बड़ी कीति सुन रखी है ।

मैं शिष्टाचार की साधुता का स्वर्णग भरता, करबद्ध बोला—आपकी इस अरेष अनुकंपा, घोर दया के लिये अनेक साधुवाद ! कहिये कष्ट का कारण ?

वे—हाँ, कुछ कहने के ही लिये तो आया हूँ ।

मैं—बड़ी कृपा ! फिर कह डालिये ।

फिलहाल मैं बास्ते के रणजीत सिनेटोन से आ रहा हूँ, और वहाँ मैं कुछ असें से सोलह सौ रुपया मासिक पर नियुक्त किया गया हूँ । यथापि मुझे सिनेमान-विनेमा से खास चिह्न है, तथापि मिस सुलोचना के मधुर स्नेहवश मुझे यह बवाल अपने सर उठानी पड़ी ।”—वे कहते जाते थे और कन्धियों से मुझे धूरते भी जाते थे कि उनकी ऐसी “हवाई बातों” का मुमरर क्या असर हो रहा है ।

मैं बाँसो उछलता हुआ अपार हृष्यक बोला—अहः हा !

आप मिस सुलोचना के अपने प्रियपात्र हैं ? ऐस खुशी ! आपने तो अपने सौभाग्य के मामने पंचलोकपालों को भी पराहत कर दिया । आजी वाह ! वाह !!

वे सच्चाई का दामन पकड़े फिर बोले—हमारी उनकी यह गुलाकात आजकी नहीं बल्कि वही पुरानी है, जब वे कलकत्ते के “टेलीफोन” आफिस में काम कर रही थीं ।

मैं—वाह क्या खब ! तब तो, आपकी यह “श्रीति” छाया-वादियों के खँडहर और चुनारगढ़ की तिकिस्म से भी अधिक “पुरातन” है ।

वे—और वह भी ऐसी वैसी नहीं तिवारीजी, इतनी प्रगाढ़ कि वे एक क्षण भी मेरे बिना जीवित नहीं रह सकतीं ।

मैं—गोया उनके प्राण आप ही मैं बसते हैं, जैसे उस “बहादुर” फ़िल्म वाले जादूगर का प्राण अपने तोते मैं बसता था ।

वे खुशी में विलक्षण पिघलते हुए मोम की तरह बनकर बोले—आजी तिवारीजी, भगवान भूठ न बोलायें तो जयतक मैं खाता नहीं, वह दातून तक नहीं करतीं ।

मैं—आजी वाह ! तब तो अपने प्रबल पातिक्रत्य से उन्होंने सीता और सावित्री की भी नाकें काट लीं ।

वे—सहज सरलता से बोले—आजी तिवारीजी आप भी बड़े भावुक निकले, सीता, सावित्री से सुलोचनां की क्या तुलना ?

मैं—अच्छा “लैली” और “शीरी” से ही सही ।

वे—आजी साहब. उनका मुकाबला ही क्या है, हाँ यह बात जरूर है कि वे मुझे जी-जान से मानती हैं।

मैं—तो फिर “लैला” और ‘शीरीं’ भी तो ‘मँजनू’ और “फरहाद” को लट्ठ लेकर नहीं मारती थीं, वह भी तो अपने इन प्रिय पात्रों पर जी-ही-जान से फिरा थीं।

वे गदगद से बोले—“आजी साहेब आपकी बातें—!” जैसे हर्ष की एक डगल “हूल” से उनका हृदय भर आया और वे आवाक से हो रहे। फिर तनिक तम लेकर बोले—मैं इन्हीं की घोर प्रेरणा से सिनेमा में गया नहीं तो, मैं तो पहले एक सफल कलाकार कवि था।

मैं—कवि क्या बलिक आप तो एक बड़े कुशल “उपन्यास-समाट” भी हो सकते हैं, क्योंकि “प्लाट” गढ़ लेने की आप में एक अद्भुत क्षमता, अपूर्व प्रतिभा मैं देखता हूँ। न हो अपने तथा सुलोचना-सनेह पर भी एक “नाविल” ही रगड़ मारिये। कसम, बड़ा जानदार “प्लाट” होगा।

वे तनिक लड्जा का नाट्य करते हुए बोले—आप भी भली कहते हैं—अरे, मैं तो आपका सेवक हूँ।

मैं—घबराया सा बोला—अरे आप यह क्या कह गये—तौबा कीजिए, मेरा सेवक बनने का ख्याल कभी आप ख्याल में मी न कीजियेगा नहीं तो सुलोचना-सनेह से आप चिरवंचित तो हो ही जाएँगे, साथ ही उन्होंने कहीं मुझ पर “प्रेमी-बहकाने” का दावा दायर अदालत में कर दिया तो मेरा घर-द्वार सब ‘कुर्की’ हो जायगा।

वे तालियाँ पीटकर हँसे—हा, हा, हा !

मैं—हाँ तो आभी उनके साथ आपकी कोडे “फिल्म” ली गई या नहीं !

वे सराह्मीय बोले— एक-दो नहीं—अनेकों ।

मैं—वाह ! अच्छा उन फिल्मों के नाम क्या हैं, जिनमें आप दोनों, ‘स्नेही-स्नेहानी’ ने अपना प्रणय-पूर्ण पार्ट—आदा फरमाया है ।

वे तनिक सोचकर बोले—“भूतों का खँडहर” “पिया की पिशाचिनी” “परदेशी परीहा” “अनधी दुनियाँ” “रात की भौ लात” “दिल का हँगा” आदि-आदि बहुत फिल्में हैं ।

मैं—तो शायद ये फिल्में आभी पब्लिक में प्रदर्शित नहीं हुईं ?

वे—बहुत बार, और सफलतापूर्वक, आप तो फिल्मों के शौकीन ठहरे नहीं कि आपको मालूम हो ।

मैं—“बजी जनाव फिल्म शौकीन क्या, अपने राया तो—“रणजीत” के भी दरवाजे तक पहुँच चुके हैं । यह देखिये वहाँ के खत-किताबत ।” मैंने उनके सामने अपने सिनेमा सम्बन्धी-पत्र व्यवहारों का बाजार लगा दिया ।

अब बेचारे की सूरत पर शायद हो गई । चेहरे की सारी खुशी खुशक होकर काली पड़ गई, “आरे यह तो बुरा कैसा ! यह तो सिनेमा का पुराना चंदूल जान पड़ता है ।” एक-एक कर वे पत्र पढ़ने लगे, कोई डाइरेक्टर का था, कोई कथानक लेखक का, कोई किसी ऐक्टर, ऐक्ट्रेस का । बेचारे का कंठ सूखकर रेगिस्ट्रेशन हो गया, उसे अपने थूक के लुधाब से तर करते, रुकते रुकते बोले—वाह ! गोया आप भी सिनेमा में चक्कर लगा चुके हैं ।

मैं—जी हाँ, पर खेद है “रणजीत” के सब प्रमुख पात्र-पत्रियों के दर्शन तो हुए पर आपही का शुभ-दर्शन अप्राप्त रहा ।

वे—हो सकता है मैं कहाँ “आउट-डोर-सीन (बाहर का हृश्य) लेने वाले लल में चला गया होऊँ ।

मैं—आप वहाँ कितने दिन से विराज रहे हैं ।

वे—यही छे माम से ।

मैं चकराया सा बोला—सिर्फ छे मास के वास से ही आप इतनी फिल्मों में पार्ट-- सो भी “हीरो” का करने चोग्य हो गये ? महाराज आप तो धन्य क्या, महाधन्य हैं, और विलकुल जन्मजात सिनेमा पात्र हैं ।

वे—जरा लड़ियत होकर बोले—नहीं, इसके पहले मैं कलकत्ते के भी फिल्म स्टूडियो में काम कर चुका था ।

मैं—अच्छा तो, आप “सुलोचनास्नेह” के पूर्ण से ही सिनेमा-स्नेही रहे हैं ?

वे—घबराहट में बोल गये—हूँ-हूँ, नाना सिनेमा में मुझे तो ‘सुलोचना स्नेह’ ने ही घसीटा ।

तारीफ है इस शख्शा की बेहयाई पर कि यह अब भी सुलोचना का ही दामन पकड़े अपनी सत्यता का समर्थन करने में लगा था । मैंने अब निशाने पर ही तीर मार देना मुनासिब समझा, और कहा—बड़ी अच्छी बात है मैं आपके शुभआगमन तथा आपकी इस घोर सुयोग्यता का सुसभाचर देश विदेश के सिवा “रणजीत-मुक्तीदोन” में भी भेजूँगा । हमारे हिन्दुराजन के लिये यह घोर गौरव की बात है कि वह

आप जैसा सुन्दर “युसूफो गुलफाम” “कामदेव” और “कन्दैया” पैदा कर सका, जिसपर हिन्दुमतान की एक मर्व-श्रेष्ठ सुन्दरी तथा कलाकार सिनेमा अभिनेत्री आपनी जान कुर्बान किये बैठी है। परन्तु कृपया यह याद रखियेगा कि अगर आपकी बातें “हवाई” हुईं तो आप पर “डिफेंशन (बेइज्जती की दावा) भी चलने का भय है, क्योंकि आप एक सर्वश्रुत प्रतिष्ठित स्त्री के ‘करैकटर (चरित्र) पर भूठमूठ हमला करने वाले साबित होंगे।

आह ! बेवारे के सर पर जैसे पर्वत भहरा पड़ा, बड़ी व्या-कुलतापूर्वक, वे बोले—अरे २ !! आपने यह—क्या ठान लिया, हाथ जोड़ता हूँ, भूलकर भी ऐसा करने का कष्ट न कीजियेगा।

मैं—क्यों ! आप जो कह गये वे बातें सब भूठी थीं ?

वे—वे भूठी तो नहीं हैं पर आप ऐसा करते क्यों हैं ?

मैं—अजी वाह साहब, हतना बड़ा आदमी जिसके शरीर में सुलोचना जैसी प्रसिद्ध ऐक्ट्रेस का मन और प्राण बसता हो—हमारे झोपड़े पर आए और हम उसके शुभ पदापण की सूचना तक लोगों को न दें।

वे—हाँ यह तो ठीक है, पर इसे सुनकर उन्हें (सुलोचना को) दुःख होगा क्योंकि वे नहीं चाहतीं कि हमारे स्नेह का प्रचार हो।

मैं—अजी तौबा कीजिए साहेब, वे नहीं चाहतीं तो, मैं तो चाहता हूँ। मैं तो जल्द खबर करूँगा भाई।

(७५)

आब वे मेरे पावोंपर गिर पड़े और गिड़गिड़ाते हुए
बोले—हमारा अपराध आप क्षमा करें। हम सुलोचना के
प्रेमी नहीं “रसोइया” हैं, चाहे आप इसकी सूचना जहाँ भी
कर दें हमें कुछ उम्र नहीं।

फिर वे प्राण लेकर भागे। हमने ब्रह्माजी को असंख्य
घन्यवाद दिया—“घन्य तोही कारीगरी रे करतार !”

आपका—

मि० तिवारी—

टेलीफोन नं०—११

हॉलो—

उस दिन जो सबेरे सोकर उठा, तो हमारी महारानीने कहा—क्यों आज ब्रत न रहा जायेगा ?

“—ब्रत—?”—मैंने तनिक घबराकर अपनी महारानी को घुरते हुए पूछा—“यह ब्रत का विवाल एकाएक यहाँ से फट पड़ा—? आज क्या है ?”

उन्होंने कहा—नहीं जानते, कृष्णाष्टमी है न !

मैं—ओ ! हाँ आज जन्माष्टमी तो है, और ब्रत तो बड़ी अच्छी चीज है पर घर में कुछ हो तब तो ? “सदा विवाली सन्त घर, जो घर गेहूँ होय !”

वे—जो हो, इसे तो करना ही पड़ेगा ।

मैं—अच्छी बात है, कर दालो ।

सो भाईं वे तो ब्रत के प्रबन्ध में लगीं और अपने राम का दिमाग जो उड़ा तो आज से कई हजार वर्ष पूर्व, द्वापर-काल में चक्र लगाने लगा । विचारों का एक बड़ा-सा बबंदर जो दिमागी तह से उड़कर कंस की राजधानी मथुरा में पहुँचा कि मैं आप ही बड़बड़ा उठा—

“आज से हजारों वर्ष पहले इसी—

भादों की भयावनी रात में, मूमलाधार बरसात में, जब कंस के कसाईपन से बसुन्धरा का बक्स बिलख रहा था, काल कोठरी के अन्धेरे कारागार में एकाएक बिजली तड़पी। लौह प्रृथिव्याबद्ध बन्दी दम्पति की हथकड़ियाँ खड़खड़ा उठीं। कांपते हृदय, बदहस्त और शङ्कामय—परन्तु आल्हादित लोचनों से उन अभागे बन्दियों ने देखा—एक बड़ी ही तेजतप्त मूर्ति उनके बन्दी जीवन को स्नेह और सहानुभूति पूर्ण नेत्रों से निहार रही है। बन्दी दम्पति बोल न सके। कालान्तर की आसन्न प्रपीडनाओं के अजल-असंख्य भाव उनके दीन, दुखी पथम् स्थान सुखपर अंकित थे, जो भौन बाणी में अपने पर गुज़रे, बेशुमार जुल्मों-जन्म की फर्याद सुना रहे थे। मूर्ति के होठ खुले, उसके दक्षिण हस्त सान्त्वना की मुद्रा में उठे, और वह बड़े ही शांतिहायक शब्दों में बोली—“शान्त होओ ! तुम्हारे दुर्दिन अब दूर हुए !”

सो भाई मेरे ! फिर श्रीमद्भागवत की रचना हुई। बन्दी बादशाह बने, मूर्ति उनकी अङ्गरक्षक बनी। दुःखी देश पर बरसते हुए विपत्ति के बादल टल गये। संसार ने सबं की साँस ली और यह मूर्ति कुरुक्षेत्र की कूर युद्धमूर्मि में जो “गीता” गा गई, वह दुनियाँ की एक ही निराली चीज रही। आज शता-विद्यों के बीत जाने के बाद भी उसकी उपादेयता, उसकी ताजगी नष्ट न हुई।

वही मूर्ति आज भी हर वर्ष के भादों की कृष्णपक्ष की अष्टमी को जन्म लेती है, और इसी मुल्क हिन्दुस्तान में ही ! सगर हाँ, उसके तबके और अबके जन्म में आकाश-पाताल का आनंद जरूर है । अब वह काल-कोठरी की आनंदी गुफा में नहीं पैदा होती; बल्कि आज वह पैदा होती है, एक बहुत बड़े आला वो नफोस मन्दिर में, जहाँ सोने के खम्भे लगे हैं, बिल्लोर की दीवारें और सङ्गमर्मर की फर्शें बत्ती हैं । हजारों झाड़ फानूस, सैकड़ों पेट्रोमेक्स अपनी चमक-दमक से उम अन्धेरी रात की जेठ की दुपहरिया बनाये रहते हैं । अब वह सूने और आह-भरे बातावरणों में जन्म लेने के बजाय, जन्मती है, तबलों की ठनक, सारंगियों की कुँहुँक और किसी खूबखू परीजाद की सेन्टोलेवेएडर से तरब्तर लहँगे की छड़ान की खूशबूदार हवा में । मूर्ति के मुरीदों की ऐसी खुशियाँ मनाने का खूबसूरत नतीजा यह हुआ कि मूर्ति बिल्कुल मनहूम हो गई और वह यह समझ बैठी—“अजी वाह ! मेरे आदमी तो वडे खुश-खुर्रम हैं, उन्हें किसी बात की तकलीफोत्तरदृढ़ नहीं ।”

पर भाई जान ! आप तो जानते हो, मूर्ति के मुरीद जैसे आनन्द में हैं ! उबलता हुआ दुःख समुद्र, गङ्गाजाते हुए विपक्षि के बादल, प्रति सुहृत्त इनके शीशा पर गरजते, तइपते और बरसते ही रहते हैं - जो आजाद होकर भी कैदी हैं, घनधान्य से परिपूर्ण होकर भी दाने-दाने के मुहताज और

क्षोड़ी-क्षोड़ी के फकीर हैं । मगर साहब ! मूर्ति महाराजिन के दिमाग-शरीफ में जो यह बात कि 'ये सावन्द और परिपूर्ण हैं ' खासी रीपीट होकर बैठ गई है, वह निकले तो कैसे ? हाँ हम स्वयं अपने मुख से न चिलताकर उसके सामने एक भाङ्डे की बीबी बाजार से मँगवा कर उससे थोख मचवाते हैं—

"मार डाला र मार डाला रे ।"

पर किसने किस चीजसे मार डाला—सो भी सुन लीजिए । ये भरनेवाले बंचारे कितने नाजुक हैं !—"जातिम ने नजर तीर मे—मारडाला रे ।"

अजीं राम कहो भैया ! 'नजरे तीर की मार' तो बड़ी गीठी चीज है और यह न्यामत हरशख्म को नसीब भी नहीं होती । यह तो केवल भाग्यवानों के ही हिस्से पढ़ी है, इरिद्र-दुखियों से तो इसकी पुश्टैनी रात्रुता है । अब 'नजरे तोर' से मारने वाले जालम का जहन्नुम रसीद करना, यह मूर्ति मुनासब नहीं समझती, और समझे भी क्यों ? वह तो जानता है, ऐसा करने से हमारे भक्तों के प्रणय-पूरित हृदय में भग्भ लाट जायेगा । उनकी दुर्नायाँ-ए-आशिकी में उल्लू बोल जाएँग । वस हमारी यही मूर्खता हमें खा रही है और यही कारण है कि मूर्ति हमारे दुख वाविद्रथ बेबसी और फाका नहीं मिटा पाती । मन्दिर में जन्मा, और गन्दिर में ही स्वर्ण-सिंहासन पर बैठी, दोनों जून तर माल उड़ाते और अपनी राधारानी के सङ्ग—जाड़ों में गिलाफ में, गर्मियों में पंखे के नाचे और फसल बाहर यानी बरसात में पालने पर मस्त हो देंगे लगाई—साई । उसे क्या फिक्र ! फिक्र तो तब हो, जब अपने पर भी बीते ।

इस हेतु मूर्ति के सुरीद महानुभावो । हम स्वयम् साक्षात् महामहिम श्री मन्महोदाचार्य निविलशास्व-निष्ठात्, वेद-लवेद-तीर्थ अपनी परम स्थूल मम्मति आपके उपकारार्थ देते हैं कि, अब आप उस मूर्ति की पैदाइश रंगभूलों में न करायें। उसके जन्मोत्सव में ढोल-ढमाके न बजायाएँ । बस, वह पैदा हो उसी काली कोठरी में, सूते और श्रीहीन फोपड़े के धलराशि भरे एक भुद्र कोण में ! आद रखिये, बगैर इसके अब आपका कल्याण नहीं । तभी उस मूर्ति को आँखें खुलेंगी, और आपका बेड़ा पार होगा ।

आपका—

तिवारी जी ।

टेलीफोन नं०—१२

मुखाहिजा फरमाइये—

इधर कई हत्थलें देश में नई-नई हुईं, जिनमें दो बड़ी बल्लेखनीय हैं। एक तो लखनऊ की “काङ्गरस” और दूसरा नागपुर का २५ वाँ हिन्दी-साहित्य-सम्मेजन। देश के इन प्रमुख जलसों में खास-खास दो बातें हुईं, जिससे लोगों में खासी एक बेचैनी पैदा हो गई है। काङ्गरस में तो नेहरूजी की ‘साम्यवाद’ की घोषणा थी, जिसने व्यापारी-मण्डल और पूँजी पतियों पर गोलाचारी की। और सम्मेजन में ‘राष्ट्र-भाषा’ बनाम ‘राजनीतिक-भाषा’ का घोलान था, जिसने साहित्य-संसार में कॉव-कॉव, हाँ-हाँ भव भव भव दिया। जिस तरह हमारे देश के व्यापारी-मण्डल की ध्रुव धारणा है कि ‘अब क्या तोंद गई रसातल को’। उसी प्रकार हिन्दी के हितकारियों को भी यह गढ़ा खुँटा-सा विश्वास हो गया है कि इस ‘राष्ट्र-भाषा’ के चिकने-चुपड़े नाम के आकर्षणों से खींचकर गई हिन्दी जनमलोक से !

परमात्मा जानें, लोगों के इस प्रचण्ड विश्वास में कितनी फीट लम्बी, कितनी इच्छा गहरी या कितने मन सेर सच्चाई है, पर अपने रास तो सम्मेतन और कमिस दोनों की ही इस घोर धोषणा से परम प्रसन्न हो अपना भगवा कोपीन तक खैरात करने के लिये चारों पांव आमादह हैं। जन-जर्मान-जर-यह तीनों भगवे का घर !—भला हुआ जो इस बवाल से 'पिण्ड छूटा । सारी जायदाद ताला-ताली सब राष्ट्रीय-सरकार के मध्ये ठोक दिनभर फुँफकार मारते पड़े रहो । घर में न किवाड़ चौखटे की जस्तर, न दरवाजे पर पहरेदार, न दरवान की आवश्यकता ! आजी, बाह क्या आजादी है ! सचमुच अगर आजादी हो तो ऐसी हो, और बाकी यही आजादी है ! वह सोने से मढ़ा दिन कब आवेगा, जब जर-जायदाद की चिन्ता से चूर लोग बिलकुल निर्दृश्य हो अपनी ठहाकेबाजो से गलियों को गुंजाते चलेंगे । सच मानिए जिस दिन यह समय आवेगा धेले का लाचीदाना गंगा माता में न केंक आऊँ, तो मेरे बबुआ की असी की नाक में लकड़ा मार दे ।

मगर साहबान ! फिर भी एक बात रही नहै । जर जर्मान से तो पिण्ड छूटा, पर 'जन' माने 'जनाना' यानी अपनी-अपनी मेहरी का क्या होगा ? भगवे के तीन प्रबल कारणों में एक महा विकट कारण 'जन' का सवाल तो समाज के सर पर रही गया । समाजबादी सरकार इन युद्ध-कुला-कुशला, कलह-प्रिया देवियों का क्या प्रबन्ध करेगी, इसके विषय में श्रीमान

(दरे)

नेहरू जी ने कुछ न फरमाया । शायद नेहरू जी को मालूम न हो कि (क्योंकि वे बड़े आदमी हैं) इस जर-जमीन से भी ज्यादा खतरनाक हैं बीवियाँ । जर-जमीन का कगड़ा ता कभी-कभी बरस छह मास पर डाठा करता है, पर इनके मारे—अजी हुजूर नेहरू जी ! आठों याम नाक में दम है । क्या खाते, क्या पीते, क्या सोते, क्या जागते, क्या उठते, क्या बैठते, हरवक्त जान जोखिम में ही समझिये । यह महादुःख कैसे विमोचन होगा दादा ! जो बीवियाँ फज्जे-इलाही कुछ पढ़ गई हैं तथा अपने स्वतन्त्र जीविकोपार्जन में लग गई हैं—हे भगवान, उनकी आनंदात और शान को कुछ न पूछिये, विलकुल नाक की कुड़िया हैं—कुड़िया ! न यकोन हो तो तनक छेड़ फर देल लाजिये, बाप रे बाप ! उतनो गरज तो अमेरिकन गोले में भी न होगी ! यदि जर-जायदाद की भाँति यह भी समाज क गले से दूर कर दी जाएँ तो भाई मेर ! सुरपुर का सारा मजा इस नरपुर में ही आ जाए । फिर साक्ष, मुक्ति, गोलोक, शिवलाक-बास का कोई प्ररत हा न रहे । सुना है साम्यवाद का निवाप 'रूस' ने इसको भी आजादी दे दी है—न काई पुरुष किसी स्त्री के गले पढ़े, न काह स्त्री किसी पुरुष के गले की ढालकी हो । यदि ऐसे लोकापकारी नियम सारे संसार में बन जाएँ तो फिर बारम्बार भक्त हितकारी सन्तन सुखकारी को भी यहाँ-वहाँ दोड़ लगाने की मसकत न करनी पड़े और बेचारे स्वर्ग नर्क के मुलाजिमान भी सम

की साँस लें, जो बेचारे एक मुहत से कामों के भीड़-भड़कों में पिसते घिसते चले आ रहे हैं ।

बस, हर जिला, प्रान्त, शहर और गाँव में गोशाला की तरह एक-एक स्त्री-शाला खोली जाए और उसी में ये नगर भर की नारियाँ निवास करें । उनके भोजन, वस्त्राभूषणादि का प्रबन्ध समाजवादी सरकार अपने सर ले ले, ताकि वे नशुनी-मुक्तनी के लिये पतियों को खब्त बनाये न रहें । शाम के शाम उनके शौहर उनसे दीदार भर कर लें । तब देखिये क्या मजा आता है—इस रोक शोक परिपूर्ण संसार में ही । चलिये छुट्टो हुई, बस तीनों झगड़े के घरों का सत्यानाश ! अब कोई झगड़े भी तो क्या लेकर, जब झगड़े की जड़ ही कट गई । और, यह बहस तो इस तरह खत्म हुई ।

अब बाकी रहा सम्मेलन वाला ‘राष्ट्रभाषा’ का सवाल । जिसके लिप माननीय मंभाषणि महोदय ने अपने “भाषण” में समझाया है—किन-किन भाषाओं के कितने शब्दों के ‘परसेन्टेज’ का मजमूआ बनाकर ‘राष्ट्रभाषा’ का ‘कुश्ता’ तैयार किया जायेगा और इन ‘परसेन्टेजों’ की उम्होंने तादाद भी बताई है ।

अब विचारना होगा कि इन भिन्न २ भाषाओं के शब्दों का ‘परसेन्टेज’ लेकर जो “राष्ट्रभाषा” का मजेदार ‘कुश्ता’ तैयार होगा, उसकी रूप-रेखा कैसी हो ? तो साहब अपने राम ने इसकी रूपरेखा तैयार कर ली है, और यह आपके महेनजर है । शायद ‘राष्ट्रभाषा’ के कर्णधारों को यह पसंद

आ जाय। सुनिये, यह श्रीमद्भागवतका तर्जुमा है, जो सेवभर के मूसले की वश कूट-कूटकर बड़ी परीशानी से तैयार किया गया है—

“हजरत शुक्रदेव जी बोले—हे शाहंशाह जन्मेजय जी ! जब बीबी द्रोपदी की बेहुमती कौरवों की भरी महफिल में होने लगी, तब वह दीन औरत दिल भोकनेवाले नालों में गगनाङ्गण को ओर अपने हखेरनवर को भिड़ाकर कृष्ण-कृष्णो (कृष्ण शब्द का बंगीयोऽधारण) डाकिया उठलेन। उस समय अनन्त लीरशान्ति खुदावन्देआता, समन्वर के एक आगोश में अपनी पाकजात पतित्रता स्त्री, बीबी कमला के कमलापम गोद में पढ़े कुछ लम-टॉक (इश्की गुप्ततया) में मशगूल थे। सो हे राजन ! जब देवी द्रुपती की यह चीख उनके कर्णछिद्रों में गुसोलिनी की गोली की भाँति सनसनाती हुई घुसी तो वे कुछ व्यग्रोद्धिग्न से ‘गोरक्ष’ को पुकारने बोला। तत्क्षण एक बहुत बड़ी लम्बी चौड़ी चौचदार चिडिया हाजिर हुई, जिसपर आरूढ़ हो, जनाबे आती कीशनचन्द्रजी भोगोवान शीघ्र द्रोपदी के पास पहुँचने माँगा और उसका सकलै गुसीबत दूर किया।

श्रीशुक्रदेव जी ने फरमाया—इस “स्टोरी” से यह नसीहत ‘गेन’ होता है कि जो लोग सत्य हृदय से कृष्ण को ‘कॉल’ देता है उसका ‘हेल्प’ अवश्य खुदावन्द करीम करता है।”

कहो भद्रय बखुदा, राष्ट्रभाषा की यह कैसी वाजिबुल

(८६)

नसलीम रूपरेखा है ? जरा मजामीन पर भी मुलाहिजा
फरमाओ, बल्लाह ! क्या फ़इकसी हुई शैली है और साथ
ही ही भी कितनी रूपष्ट और बोधगम्य भाषा । काश, सम्मेलन
के मालिकानों को रास्ट्रमाषा की मेरी यह रूपरेखा पसन्द
आई, तो मैं अट्टारहों पुराणों से भी मोटी पुस्तक सिर्फ इसी
राष्ट्रभाषा में तैयार कर सकता हूँ और विलकुल निर्लोम-
निर्खार्थ होकर, “पिछोर” साहित्य-सेवा के ख्याल से । भले
ही बङ्गलाप्रसाद पारितोषिक भी न मिले । बस आज
इतना ही ।

आपका—
तिवारी जी ।

टेलीफोन नं०—१३

हमारे टेलीफोन सुनने वाले सु-सज्जनों !

भगवान आपको सौ जोड़े बच्चे बख्शें ।

क्योंकि आज-कल बच्चोंकी बड़ी डिमाण्ड है । पहले तो लोग उतनी बड़ी कीर्तियाँ और सुयश अर्जन कर जाते थे कि उनके मरने के बाद वही कीर्ति ही उनकी नाम-निशानी और पिण्ड-पानी का काम करती थी, मगर अब तो यह कीर्ति-कमाई, आडट-आफ फैशन और धन की नुकसानी समझी जा रही है । अब तो नाम निशानी को अगर-अमिट बनाने के लिये, प्रजोत्पादन करने में ही पूरी कसरत और स्वप्रता दिखाई जा रही है । लेहाजा इस डिमान्ड से आप नहीं तो कम से कम आपकी बीची महोदया कभी महफूज न होंगी, इसलिये मेरा यह आशीर्वाद अनफिट न होगा । खैर साहब ! आपको तो मालूम ही है और जैसा कि मैं अपने पूर्व के टेलीफोनों में सुना चुका हूँ, जब कि सूपये के लिये हाय तो वा संसार के सर्वश्रेष्ठ धनाधिप मिं० हेनरी फोर्ड और जनाब निजाम हैदराबाद के घर भी मचा रहता है, तो मुझ गरीब के घर पैसों के लिये रोज एक-दो खून नहीं हो जाता, यही गनीमत है । कथावाचकी तो अपनी संगीत विषयक अयोग्यता से

छूटी, और सनातन धर्म का प्रतिनिधित्व पूना बमकारड से गया। अब हम खाएँ तो क्या ! और, खाना बिना तो अपने राम दो-चार-दस दिन तक रुक भी सकते हैं, क्योंकि जिनके बाबा-दादा और पुरखिने “वारिं-बसासा” खाकर हजारों वर्ष रह गईं, क्या उनकी ओलाद अब इतनी पतित हो गई है कि १०-२० शाम भी खाप बगैर नहीं रह सकती ? मगर जनाब ! जिस भंग-भवानी का मधुरालिंगन भगवान शंकर सरीखे त्यागी-विरक्त महादेव नहीं कर सके, तो मुझसे तो मरे पर भी त्यागते न बन पड़ेगा। सो अब मेरी उसी जीवदायिनी विजया की भी तंगी मुझे सताने लगी। क्या करूँ, क्या नहीं ? आखिर सोचते-सोचते इसा फैसले पर पहुँचा कि चलो, इसी फैसले पर पहुँचा कि चलो, किसी ‘मुर्भाटोन’ में, नाम तो मेरा हो ही गया है; “प्लाट राइटर” की जगह पर दर-खारस दे दूँ गा, न होगा ऐकटरी ही करने लगूँगा। और खुदा के फजलोकरम से अपने शरीर की बनावट भी ब्रह्मा ने कुछ बारीकी से की है कि, मुझे “जोकर” बनाने में सिनेमा बालों को न कोई जहमत उठानी पड़ेगी, न उनके तेल-मसाले ही खर्च होंगे। मैं तो खुदा-खाना से ही, पेन्ट-पान्ट किया हुआ अन्यसिद्ध जोकरी-काया लेकर आवतरित हुआ हूँ। फिर क्या था, मैंने तो आज तक अपने विचारों को कार्यरूप में लाने के हेतु विलम्ब करना सीखा ही नहीं; बड़ी-बड़ी कठिनाइयों से और बड़ी लम्बी-चौड़ी आशाओं के सड़बाग दिखलाकर अपनी महारानी को राजी किया और छठे महीने सोने की छोलड़ी गढ़ा देने की शपथ लेने पर उन्होंने मुझे अपने ३॥ भर के सोने का “नथ” गिरों रखने को दिया। सो साहब, सब पूछिये तो आज मैंने हिज एक्सीलेन्सी मार्ड

लौर्ड “बिल्लीटङ्ग” की माई-बाप सरकार को दिल खोलकर दुआ दी । सोने के भाव की तेजी की सार्थकता मुझे आज ही प्राप्त हुई । ७३॥) १० का नथ पूरे १२२॥) १० पर चिका । बाँसों उछलता घर आया, और यात्रा प्रारम्भ कर दी । यद्यपि मेरे मुहल्ले का काना घरभरना तेजी अपनी मैली—तेल में झूबी साफी ओढ़े, नस सुइकता अपनी नाक दुनल्ली से “ठाँयँ-ठाय” दाग रहा था, पर अपने राम ने कव इसपर कभी सिर खपाने की मनहूसियत की है ! चला गया । १५॥—॥ हमारे स्टेशन से चिकटारिया टर्मिनस के किराये लगे । आह ! जिस समय बस्बई पहुँचा, तबियत सुशा हो गई । गो बाम्बेवाले मेरी ओर तनिक भी नहीं हेरते थे, फिर भी मुझ इसकी जरा भी पर्वाह न थी । उन्हें तो एक दिन मुझे देखना तो क्या मेरे पैरों पड़ना होगा, तनिक “केवकड़े” की शील पर मेरी फोटू तो यिच जाने दो, तदलका मचा ढूँगा अपने कलामय ऐकिटङ्गमोशनों से ।

पर साहेब ! क्या कहूँ अपना अभाग्य ! कर्ता का यह कर्मकमंडलु जो बलपूर्वक उन्होंने मेरे कपार में छुसेड़ इया था, बाम्बे जैसी रेल-पेलमयी भूमि में मैं चूर हो गया, पर इस चाण्डाल में तनिक “चीस” (क्रेक) तक न हुई ।

सोनपुर मेले के गज-ग्राहीद्वारक भगवान् हरिहरनाथके मुख्यद्वार पर दर्शनार्थियों की उतनी क्या भोड़ होती होगी जितनी “सुकुमारी-सेनिटोन” के सदर गेट पर नाचनेवाले और बालियों की धकापेल थी । एक तरफ चमकीले कोट, बूट चढ़ाप, जुलफ़े सुलझाप तनकर—कुछ रोब से युवक खड़े थे, मानो “सब इन्सपेक्टरी” का चुनाव होने वाला है, तो

दूसरी तरफ हरी, लाल, पीली, उज्जली साड़ियाँ, ज़म्फर और
फ्राक-मोजा पहने देवियों का कारवाँ खड़ा था यानों बे कहीं,
“देसावर” को चालान की जाने वाली हैं। इन कामरेवों और
तिलोत्तमाओं की विजलियों के मामने मुझ पुरानी धुएँवाली
“हबरी” को कौन पूछेगा ? आह—! मुझे तो अपनी मूर्खता
पर हलाई आ गई, और उधर “नथ” के ख्याल ने नाक पर
पसीना ला दिया । हरे राम ! अब क्या हो ?

एक बड़ा ठाठियल आदभी स्टूडियो के कोहेकाफ से
‘इन्द्र’ सा अँकड़ता हुआ निकला और कुछ लोगों को
भीतर बुझाकर बाकी को Getout कहकर फाटक
बन्द करवा दिया । सभी बेचारे हारे जुआड़ी से गँहुँ बनाये
लौटे, जिनमें एक नम्बर मेरा भी था । सुना—“स्टूडियो” की
प्रधान अभिनेत्री—जिनके नाम पर सेनिटोन है—मिस
सुकुमारी यदि मेरी सिफारिश कर दें, तो मैं बिना जाँच-बाँच
की आँच में तपाये दाखिल हो सकता हूँ ।

अब मुझे यह फिल लगी की देवी सुकुमारी की सुसेवा
लक मैं पहुँचूँ तो किस तरह ? उनके दरवाजे पर भी दर्शना-
र्थियों का वही भोड़-भड़का ! “इन्टरव्यू कार्डों” से दो टोकरे
भरे पढ़े थे, फिर भी कुछ नहीं, तो हजारों भकुते लोग “इन्ट-
रव्यू” कार्डों का थैला पठवा रहे थे । पर मैं तो साहब ब्राह्मण
ठहरा ! जब रावण-कंस से वज-कठोर के घर मेरा दर्ढार न
लगा, तो “सुकुमारी” तो विचारी सुकुमारी ही ठहरी । धड़-
धड़ता हुआ मानों मैं अपने घर में छुस रहा हूँ—जिसे पर
चढ़ने लगा । मुझे यों धड़ले से चढ़ते और मेरी बैडौल
खोपड़ी, कुण्डोदर देख, एक सन्तरी ने ललकारा—अबे कौन

है रे ! वेसींग पूँछ का जानवर ! “काँजीहौस” नहीं है ।
चल हट !”

मैंने उसे असीसते हुए कहा—“भाईजान, भीड़ तो
“काँजी-हौस” में भी लावारिस जानवरों की नहीं होती है ।
खैर मैं ब्रह्मण हूँ, देवीजी को आशीर्वाद देने जा रहा हूँ ।”
फिर मैंने उसे भी “जय-जयकार” की धुआँधार वरसात में
भिगोकर गीला कर दिया, उसकी कड़ी आँखें तनिक ढीली
पढ़ीं और अपने राम चटपट धस पड़े मिस सुकुमारी के
वस सजे-सजाए रूम में । उन्होंने मुझे घबराई हुई निगाहों से
देखा—“आखिर यह किस विचित्र लोक से यहाँ धैंस पड़ा ?”
उनके कुमुम-कोमल पाणि-परलब “घण्टी” की ओर बढ़े ही थे
कि मैं आगे बढ़कर उन्हें एक सुन्दर पुष्पमाला पहनाता हुआ
बोला—महिमामयी देवी ! मैं एक दरिद्र ब्राह्मण हूँ, आशीर्वाद
प्रदानार्थ आया हूँ । फिर तो “श्रीकृष्णः कुशलम् करोति सततं”
बाले आशीर्वादात्मक श्लोकों का जो पिटारा खुला, १२ मिनट
एक साँस से बोलता ही चला गया । अन्त में उन्होंने ही
कहा—आप बैठ जाओ, कहो, किस लिये पधारे ?

अब मैंने टटकी दुलाहन की तरह नेटा छिड़क-छिड़ककर
आँखें भीच भीचकर रोना शुरू किया और अपने सनासनधर्म
के जमाने की बदन्ति से लेकर कथावाचक की दुर्गति तक का
तथा बास्त्रे प्रस्थानार्थ दीधी के “नथ” विक्रय तक का सब

बर्णन विशदरुपेण सुना—“त्राहि देवी संकट हरो” कहकर मैं—चिलकुल पट्ट पड़ गया ।

उन्होंने मुझे उठ बैठने की आज्ञा दी, और उस समाह मिलने को कहा है । सो देखें “दाना पानी” क्या करता है, मैं तो अपने कर्तव्य-पूर्ति-करने से बाज न आया, आगे जाने मेरी महारानी का भाग्य, “छताड़ी” बनेगी या उसके साथ ‘नथ’ की भी बुनियादी नेस्तनाबूद हो जाएगी ।

आपका—
तिवारी जी ।

टेलीफोन नं०—१४

मेहरबान !

अपना चोला तो आजकल मन्दी के कारण गन्दा हो ही गया है, तिसपर लोगों की चाँच-चाँच और बेचैन किये रहती है। परमात्मा की देन से मेरे महानगर में तीन या चार छोड़ियों को लेखक होने की खफत सवार हो गई है, दो विचारे तो मैट्रिक के श्री डजन फेल हैं, और एक कलकन्ते की पतितोद्धारक “यूनिवर्सिटी” में “इन्ट्रेन्स” कर आये हैं। मजा यह कि एक गद्य लेखक है, एक पद्य लेखक और एक कहानी लेखक। और कुछ हो या न हो, पर इनकी सुदृश्य से कागज बालों की आजकल चाँदी है, हफ्ते में पाँच रीस कागज ये रगड़ मारते हैं। दुर्भाग्य से कहिए या सौभाग्य भे; एक दिन “लालपाक” में अपने राम मे मुँठभेड़ हो गयी और इन्शा-अल्ला कविजी से ही। आप बड़े विनय-विनम्रता युक्त पालागनोपरान्त, अपने मुँह पर लटकी अपनी लाघ्वी जुरुफों को अपने कान की खुँटी पर रखते हुए बोले—“अहा पण्डित जी महाराज ! अहोभाग्य दर्शन पाया, धन्य हुआ ।” मैं भी शिष्टचार का पलता कर्यो छोड़ता, उनसे कहीं दुगने पैमाने में झुंककर, दाँत निपोर कर

सुडजनता का सीमोललंघन करता हुआ बोला—“अरे रे रे, बबुआजी, धनभाग मेरे जो आप जैसे विद्वान् से समागम हुआ, कहिए कैसे रहे ?—“उसकूल” से कव आये ?

वे तनिक मेरी मूर्खता पर हँसते हुए बोले—“उसकूल” नहीं पण्डितजी “स्कूल” !

मैं—‘इम्कूल’ नहीं बबुआजी ‘उसकूल’ !

वे फिर हँसकर बोले—यानी, इनके मानी ।

मैं—मानी तो बबुआजी इसके, मानिन्द आइना के साफो-दुहस्त है, ‘उस-कूल’ का माने एक तो ‘उम—किनार’ हुआ और दूसरा “उस-कूल” उस गोत्र का भी हुआ ।

वे—परिभाषा कीजिए ।

मैं—आजी परिभाषा तो इमकी रेलवे लाइन की तरह ‘क्लियर’ है, जो इस-पार यानी हिन्दास्तान का छाइचहर, उम-पार यानी लखड़न को जा लगे, एवम् अपने कुल गोत्र अर्थात् भारतीय रीति मर्यादा पर लातें मार ‘उस कूल’ यानी लंडनी कुल नाम गोत्र में जा मिले, उनके भाव, भाषा, आवंश्य, लिंगाम सब उस कुल के हो जाएँ । जहाँ ऐसी शिक्षा दी जाती हो वहाँ ‘उस कूल’ है ।

वे हँसे, और खुब ठठाकर ! समझे, अरे ! यह तो मेरा भी ताऊ निकला, कुछ मैंपे भी, फिर बाले, खैर परिष्ठत जी जो हो, अब तो हम सभी कुल, गोत्र से विलकुल फरागत पा चुके हैं । हम तो विश्व-प्रेम-प्रचारक कवि हैं और यही जीवन आज साढ़े लान सप्ताह से बिता रहे हैं । और.....

मैंने अपनी शङ्का की निवृत्ति के हेतु उन्हें भीच ही में दोका—क्यों इस साल ‘रिजल्ट’ कैसा रहा ?

(४५)

वे कुछ भलाए से बोले—रिजल्ट ! रिजल्ट की भी आप अली पूछ रहे हैं, वह कथ किसी के 'फेमरेबुल' (पक्ष में) हुआ है ?

मैं—जी हाँ, जी हाँ, और सो भी आप जैसे रसिक शिरो-मणि कवियों के फेमर में रिजल्ट जैसा द्वाई सब्जेक्ट (शुष्क विषय) कभी हो सकता है ?

वे उछलकर बोले—आप को साधुवाद, सो की एक ही कही आपने ! मैंने अपने कवि-हृदय की ही सुप्रेरणा से “डस कूल” को लालक दे दिया ।

मैं—अजी वाह ! एक ही किया है ! आजकल कौन भक्तवा पढ़ता है !

वे—और फिर पढ़ने में कुछ नाम भी तो नहीं है पण्डित जी ! आज की पढ़ाई का “एम” (उद्देश्य) है नौकरी, सो भी भिलगी मुश्किल ? तो क्या भला हो, कवि कर्म से ही विश्वप्रेम के प्रचार का दुर्योकर्म किया जाय !

मैं—सानन्द वाह ! वाह !! क्या कहता है ! आपके इस घोर सुधि नार की बलिहारी !

वे कृतज्ञ भाव से—आपकी कृपा ! पर हाँ, एक निवेदन है, यदि कष्ट न हो तो तनिक तकलीफ कर आप इस बेङ्ग पर विराजें, मैं अपनी एक अति तुच्छ-कविता आपको दुना दूँ । आपको यह जानकर वड़ी प्रसन्नता होगी कि मेरे कवि-जावन के कुल इन साढ़े तीन हफ्तों में ही चतुर्दिक्ष मेरा नाम फैल गया और मैं एक कलाकार के नाम से पुकारा जा रहा हूँ ।

अपनी जो रचना अभी आपकी सेवा में पेश करूँगा,
वह विश्व की सारी वज्र कला की कविताओं में अपना
एकान्त स्थान रखती है, विश्वप्रेम की पुकार इसके पोर-पोर
में, लड़ी-लड़ी में गुथी है, और कविता भी हुई है जिसकुल
असूते विषय पर ।

मैं बेघर पर बैठ गया, क्या करता ! और हमारे ये विश्व-
प्रेमी जी अपनी लोकोत्तर कविता सुनाने लगे :—

ऋ कविता ४३

हे हृदय हृषि कर्यों जाता, दुनियाँ की मूक व्यथा में ।

दिल दूट दूक हो जाता, ध्रीतम की मधुर कथा में ॥
कूँए में चो गागर में, सागर में, तूँ ही तूँ है ।

थाली में, ओ लोटा में, पोखर नाहर में तूँ है ॥
बिल्ली, पिल्ली-पिल्ले में, मुर्गी, मुर्गी दरबे में ।

लोहा, लकड़, खपड़ में, तकली, चरखा करघे में ॥
सब जगह समझा तू है, मध खेल रचझा नू है ।

यह अखिल विश्व है तेरा, कोलहू चालन मूसर तक ॥
शुचि शश-श्यामला भू से, बालू उर्वर ऊसर तक ।

जोड़ो अनन्त से नाता, उड़ चलो गगन पथ भाई ॥
जहाँ निष्ठुर वह छलिया, काँटों पर सेज बिछाई ।

भहराय पही तुम उस पर, वह कर्यों न हृदय में लेगा ॥
यह विश्वप्रेम का प्याला वह लधा-लम्ब भर देगा ।

वे मेरी दाद को इन्तजार में ही थे कि मैं फट् बोल पड़ा—
वाह ! वाह !! अब इससे बढ़कर विश्व-प्रेम की कविता कौन
भकुवा, क्या गोबर खाकर लिखेगा साहब ! वाह ! कैसे पद-
पदार्थ हैं, कैसी कोमल कान्त पदावलियाँ हैं ! माशाअल्ला !
जैसे दो बजे रात में गधे के रेंकने से गाढ़ी-से-गाढ़ी निद्रा में
सोया प्राणी जग उठता है, उसी प्रकार आपकी कविता शवसं
कर हृदय की भारी सुप्रसिद्धि छापकर हड्डियाँ हड्डियाँ
वाह ! वाह !!

वे कविराज—पण्डित जी, यह तो आप पूर्वपार्दों की कृपा
है, कहिये उयादा मैं कविता नहीं करता, नहीं तो कीट्स, शेली,
रेटे, शेक्सपीयर सब के रेकार्ड ठूट जाते ।

मैं—जी हाँ, इसमें क्या शुब्दहा, कविता से सब को धूणा
हो जाती, जैसे आजकल के नृत्यगान से लोगों को नफरत
हो गई है । यह परमात्मा का शुक्र ही है जो आप कविता नहीं
करते, न तो सारे कवियों का और उनकी कविताओं का अब
तक महाश्राद्ध हो गया होता ।

वे—अच्छा एक चीज और सुन लीजिए ।

मैं घबराया, हरे भगवान आज किस कुसाइत, कुलगत में
धर से बाहर निकला, फिर बोका—नहीं इस समय न सुनायें,
आपकी यही एक ही कविता सुनकर कमर से लेकर कण्ठ
तक पेट भरकर अँड़स गया है, अब सुनने से अजीर्ण होगा
और पहली कविता का सुख्वाद भी नष्ट हो जायगा, इस हेतु
अभी रहने दीजिये ।

वे बोले—बस एक मिनिट ! सिर्फ एक मिनिट ! चूँकि
आज तक आप सा गुणमाही और मेरी कविताओं का सुक

समर्थक, तथा प्रिय और सुवोध श्रोता मुझे एक भी न मिला।

यह लो यह तो और मजा रहा, चलते बैल की ही पीठ पर लट्ठ-प्रहार ! मैं बोला—“जी नहीं अब हुट्टी दीजिए ।” मैं चटपट चठ खड़ा हुआ ।

पर वे आगे आड़ गये—अच्छा सिर्फ ३० सेकेण्ड ।

मैं—बगल से कतराता हुआ—जी नहीं, जी नहीं, अब एक लोहजा भी नहीं ।

फिर वे आगे हाथ फैलाकर मुझे रोकते हुए बोले—अच्छा १० सेकेण्ड ।

मैं तनिक लम्बे छग डालता हुआ—नहीं, नहीं, मुझे बखिशए अब आधा क्षण भी नहीं ।

फिर वे दौड़े, मैं भागा । मैं तो भाग चला, पर वे बेचारे एक कँटीली भाड़ी में—जिसे फाँदकर वे मेरी राह आगे ही आकर राकना चाहते थे—बुरी तरह फँस गये । माली की जो आप पर हष्टि पढ़ी, उस मरदूद ने ललकारा—“उस-उस यही आज बादमुहूत के “कोटन” उखाड़ने वाला चोर पकड़ गया, बच्चू बड़े परचे थे ! आज रहो, सारा भूत भाड़ देता हूँ ।” पोरसे भर का लट्ठ फट्टारता वह दौड़ा और बेचारे के कान पकड़ कर उस भाड़ी से बाहर छींच लाया, उनका सारा बदन छिल गया । फिर वह आँखें तरेर कर बोला—क्यों वे, यह तेरे बाप का बाग है, जो कुलवारी उखाड़कर ले जाता था ।

वे बोले—“आरे भाई ! मैं चोर-चाकू नहीं, आजी ! मैं तो

“कवि” हूँ, एक महाशय को कांवता सुनानी थी, सो जा रहा था और तुम्हारी माड़ों में चलक गया ।

माड़ों मुन्डे हिलाता हुआ बोला—हमीं से चाल ? अन्धे हो, रास्ता उधर, और तुम जा रहे हो इधर से, इसके माने ?

वे बोले—आरे यार ! जलदी थी ।

माली—अज्जी हटाओ इस चकमे को, मैं इनमें पड़ने वाला नहीं, चलो आज मैं तुम्हें कलटूर साहब के पास ले चलूँगा । जुर्माना देतेन्देते तो मेरी कमर टूट गई, और बाग लगे तुम्हारे घर !

कलटूर का नाम सुनते ही कविजी का दिमाग दग्गा दे गया, वे भारे भय के थर-थर काँपने लगे । विचारे कवि थे, पैसे पास कहाँ, दुपट्ठा माली को समुद्र कर घर भागे । “विश्वप्रेम” का यह मीठा (!) प्रसाद तत्क्षण प्राप्तकर विचार तृप्त हो रहे होंगे ।

आपका—

तिवारी जी ।

टेलीफोन नं०—१५

डियर सर !

आजकल हिन्दी संसार में एक खासी हलचल मी मची हुई है। कहीं 'शिवाबावनी' के लिये हाय तौवा है, तो कोई कहीं लिपि-मुद्रार के लिये मरा जा रहा है, तो कोई लेखकों का संगठन करा रहा है। कोई 'अमुक' को वाणी का वरपुत्र बता रहा है, तो कोई 'अमुक' में 'वर्डसवर्थ' की आत्मा कह रहा है। गर्चे कि हलचल सूब है और सच पूछो तो अपने राम भी हलचली प्रवृत्ति के ही परायणों में हैं, क्योंकि "वह जिन्दगी ही क्या, जिसमें कुछ हलचली न हो!" गो इस कोई 'हलचली' से कुछ 'कन्भुस्सा' टूटने का नहीं, मगर भैया! अपने नामों का प्रोपेगेण्डा, उसकी ख्याति चाहे वह 'सु' या 'कु'—तो जरूर ही ही जाती है। और 'नाम' के लिये ही तो आज दुनियाँ फँसी के तख्तों पर भी बशीको बंखुशी भूल जाती है।

मगर महरबान कुछ हिन्दी हितेषी सज्जनोंने जो आन्ती-यता की तान छेड़ी है, उसकी उड़ान तो अच्छी रही—यानी सब पेपरों में कुछ-न-कुछ लिखा, इन सज्जनों के नाम छपे, मगर इस नाम का अज्ञाम बड़ा बुरा हुआ। यू० पी० और विहार की यह 'नुच्चा-चुथी' एक दिन बेढ़ब रंग लापगी। पर-

पर-ठहरो-हस्ती की ! मैं भी क्या सोचते-सोचते क्या साचने लगता हूँ । चूल्हे में जाए विहार और भाड़ में जाय यूँ पी० । अपने नामों का प्रोपेगेण्डा तो खासा हो गया । दस-बीस-पचास जान तो गये कि हाँ, कोई है—विहार के सरी !

हा, हा, हा, हा, मैं आपको क्या बताऊँ ! यह ‘विहार के सरी’ का खिताब तो आजकल विहार में टके सेर हो गया है । पहले तो ‘विहार के सरी’ का खिताब बाबू कुंवरसिंह को ही नसीब था । फिर १६२१ के सत्याग्रही जमाने में यह खिताब एकाएक भागलपुर के स्व० बा० दीपनारायणसिंह को सरकार फरमाया गया, और अब इस खिताब का सेहरा बा० श्री० कृष्णसिंह के सर बँधा है । पर हाँ, मैं तो दूसरी ही बात कह रहा था । नाम मारने के इश्की-मरीज आज तो हरक्षेत्र में मौजूद हैं और साहित्य-सेवकोंका तो अपना यह खास रोग है । कमल पकड़ी नहीं कि नाम प्रचोर की तमन्ना की तबालते में पड़े । अगर साधन पहले रहा, तो उरहूँ, कातवारू होमर भी गोल्डसिमथ; शैली, कीटूस, कालिदास, भवभूति हो गये, और साधन न हुआ तो सचमुच इन गुणों से विभूषित होकर भी बैचारे विलविलाते रहे । कर्म पर दुहृत्थड़ ठढ़ाते रहे ।

नाम मारने (!) के चन्द तरीके जो मैंने सोच रखे हैं, उसे भाई मैं आपको सुना रहा हूँ, लेहाजा आप भी इसपर गौर फरमाओगे और अपने आला दिमाग की मशवरा-ए-आला से मुझे खबर करोगे, क्योंकि नाम-प्राप्ति के हरएक ब्रेमी भाई के लिये यह बात गौर-तलब है कि हम जो चीज ऐश करें, वह एक और निराली हो । जिसपर मौलिकता० का मुलभ्या बा-आसान चढ़ाया जा सके । वह चाहे कुड़ा या

कतवार हो, मगर हो नई विचारधारा । इस विषय में मैं हजरते 'चिरकीन' साहब को दिली दाद दिये बगैर नहीं रह सकता । हालाँकि उन्होंने जो कुछ लिखा 'मल और मूत्र' पर, मगर फिर भी उनकी सूझ निराली रही । बेचारे ने देखा— 'सब उपमा कवि रहहि जुठारी' ! यानी सारे भाव, सारे विषय और सारी सामग्रियाँ तो कवियों ने जड़ी कर रखी है, अगर हम भी उन्हीं की 'लाइन' पर दौड़ पड़े तो हम "शायर-सिंह-सपूत्र" कैसे ? हम तो वही 'लोक-लीक गाढ़ा घलै, लीके चले कपूत' ही कहलाएँगे । इसमें बेहतर हो, कि हम उर्दू की शायारी दुनियाँ में एक आक्षण्ण विषय उपस्थित करें । अब चाहे लोग उनकी इच्छाओं से कितनी भी नाके ऐंठा करें परन्तु 'उन्होंने जो कुछ दी, नड़े चीज !' उनकी यह 'क्रेडिट' किस भकुवे को कबूल नहीं । वर्तमान नव-युवकों के मर्दानी बनायम जनानी चोचले और नखरे कम-से-कम हिन्दी संसार में न थे, उसपर सुधारवाद का कैसा नाजुक और कैसा नफीस मुलम्मा चढ़ाकर यारों ने हिन्दीबालों के गले उत्तारकर मिनिटों में बाहवाही लूट ली ।

सो भाई मेरे, इस 'नाम-लूट' की 'लूट यकै मो लूट' की दीवानी धुन में मैंने भी एक बेनजीर, बेजोड़, बिलकुल बेहतर, बहुत बढ़िया और एकदम अचूती चीज तैयार की है । शायरों और कवियों ने अब तक विहंग समाज की तीन ही जातियों-यानी कोयल, बुलबुल और पथिहरा—को ही अपनाया है । मगर मैंने उत्तारण समाज के दो गलों को, जो अपने कर्कश चीत्कार के कारण कवि-समाज से सदा उपेक्षित एवम् निर्वा-सित रहे, अपनाया है । इनके इस बेदाना-विकल चीत्कार में कैसी मूक व्यथा, असह आकुलता है—अनन्त पथ में सतत

विचरण करने वाले, इन अभागे पश्चि-कुमार और कुमारियों
की ओर अब तक किसी सहदग सज्जन कवि ने ध्यान देने की
दया नहीं दरसाई है। सो मुनिये मेरे इस 'भौतिक' विषय की
'भौतिक' कविता—

"कौबों की काँच काँच में,
चीलों की हाँ—! टर्नर्टर्न में;

है छिपी बेदनाएँ दिल की—
दोनों के अन्तर्म में ।

जब अपने पंख फटाफट,
कर चोल गगन पथ धाती,
हो विकल बेदना पूरित,
जब करण राग वह गाती ।

तब कलाकार कौए का—
. दिल दूकदूक हो जाता;

वह मूक न्यथा कम्पित हो—
है काँच-काँच चिल्लाता ।

मैं समझा प्यारी चील !
तू खोज रही प्रीतम को,
मैं कलाकार हूँ इससे—
होती पीड़ा है मन को ।

पर समझ अभागी चील !
प्रीतम को किसने पाया;

(१०४)

दे नोच जीड़ को अपने,
यह जग सारा है भाया ।

बस भैया यह तो पहिली कविता है । अगर खुदा-न-ख्वास्ता
इससे नामधरी न हुई, तो दूसरी-तीसरी ही नहीं, हजारों
सुनाऊँगा और आगर भगवान ने चाहा, तो अगर कलाकारों
और मौलिक आविष्कारकों की लिस्ट में अपना शुभनाम
लिखावाकर ही भरूँगा ।

अच्छा आनन्द रहिये !

आपका—

तिवारी जी ।

टेलीफोन नं०—१६

जनाव आली !

मसीहुल-कुल मुल्क-आलिमुल-हिकमत, तबीबुल-जहान और महामना “अलेक्जेण्डर दी ग्रेट” के मशहूरे आलम हकीम हजरत जनाव लुकमान साहेब का एक खते पाक, कल एक पंसारी के घर से मिर्च को पुड़िया बना इस खाकभार को हासिल हुआ। घरवाली तो उस खुबसूरत कागज में लिखे खत से अपनी बिटिया की गुड़िये की “टाप” बनाने चली थी, पर खत के मोतियों के दाने जैसे हरूफों ने गुम्फे अपनी ओर सुतबद्ध कर लिया। मैं चिल्ला पड़ा, हैं फाँदो मत, जरा लाओ तो देखूँ कैसा रुक्का है।

वे बोलीं—रोकका बोक्का कुछ नहीं, कागज तो है। आखिर इस रही कागज में क्या लिखा पड़ा है, जो यों मरे जा रहे हो ? मैं साधिकार बोला—तुम्हें मालूम नहीं, गुदङ्गी ही मे लाल छिपे होते हैं, मगर उन्हें अहमक और जाहिलां की आँख नहीं देख सकती; जैसे किसी उच्च, पठनीय हिन्दा पत्रिका की कीमत ढाके के ‘विज्ञापन दाता’ बंगाली भाई नहीं जानते‘ विज्ञापन देने के कारण पत्रिका उनके निकट “फ्रां”

जाती है और अपना छपा विज्ञापन देखकर गुणग्राही (!) बंगाली भाई, आने डेढ़ आनेगा उसे पंसारी सज्जनों के हाथों सौंप देते हैं, जिन्हें स्वर्ण अक्षरों में लिखे-चारों वेद की पुस्तिका बनाते उसी तरह देर नहीं लगती जिस तरह मेरी अण्टी से पैसे निकालते नुम्हें देर नहीं लगती है ।

“वे—लो लो—!! कलेजे से लगा लो, तुम्हारे मारे एक बच्चे का खिलौना लनना भी सुहाल है ।” उन्होंने उम्मखत को मेरे मुख पर कैम्प जेल के जेलर के तमाचे की तरह फेंक मारा ।

मैं मादर पत्र की घृत भाइते हुए उसे उठाकर बोता-गदि “शिल्पकला” की ही ओर इतनी विशेष रुचि है, तो क्या भला हो एक छोटा मोटा रोजगार ही कागज की टोपों का खुलवा दूँ !

मैं खत लिये अपने खास कमरे में आया । लिखानेट किसी बांसों ऊपर पहुँचे आलिम की थी, नीचे देखा दस्तखत किसी की है,— आहा ! क्या कहने हैं ! परियों को भी देखकर उतनी खुशी हासिल नहीं होती । अरे ! यह तो खास हजरत हकीम लुकमान साहब की हस्तलिपि है । म्यूजियमबाले सुन पावें तो लाखों सहस्रों की भेंट चढ़ावें और “पुरातत्वान्वेषियों” की लिस्ट में अपना नाम चढ़े सो फर्क ।

हेडिङ जो पढ़ा—क्या बताऊँ हुजूर—! कोठरी के किंवाड़े बन्दकर पूरे पौने दो बाणटे तक खुशी में नाचता रहा, कई बार जब खोती में फँसकर गिर पड़ा तो नझा नाचने लगा, यह खोती समुरी आनन्द में बाधा दिये देती थी । या मेरे भगवानन ! नुस्खा भी वह हाथ लगा जिस भर्ज के आहले कौम,

आहले फिर्की, क्या राजा क्या रङ्ग; क्या मूर्ख क्या पंडित सबके सब पूरे मरीज हैं। भला बहा होना कौन नहीं चाहेगा ? बड़पन का अत्यन्त जठरानल किसके दिलों में नहीं सुलगता ! बस नुम्बा छपा और रातों रात राजा हुए ।

मुलाहजा फरमाइये, हजरत लिखते हैं अपने उस खते-शरीफ में—

बड़े आदमी होने के चन्द आजमाये नुस्खे !

बड़े के माने कुछ लक्ष्य-चौड़े से नहीं हैं। यों तो दरखतों में “ताइ” परिवर्तों में “लग-लग” और हैवानों में ‘‘जँट’’ गुलों (पुष्पों) में “सूरजमुखी” बड़े होते हैं। मगर दुनियाँ—जितनी दरखतों में आम, परिवर्तों में कोयल, हैवानों में घोड़े और गुलों में गुलाब-बेला वगैरह की कदर करती है, उतनी ऊपर बताये बड़ी चीजों की नहीं करती। लेहाजा बड़े होने के माने, इज़जत, कदर से है, नामों निशान से है, मगर कहीं इज़जत सर्ते सर्ते बैठे बिठाये नहीं मिलती, इसके लिये ज़खरत है जिन्दादिली और बहादुरी की ! आप ख्याल रखेंगे इस हकीम हैं, हमारी बहादुरी की मन्शा तलवार चलाने याने मैदाने-ज़ङ्ग में गला कटा देने से नहीं है, मरतलब कुछ और है जिसका खुलासा बयान हस्त-जैल है :—

(१) अठवल में तो जब आपको बड़े जनने की मर्ज अपने बैहक काढ़ में ले जाए और आपका दिल इसे महसूस करे कि वगैर इलाज के सेहत नसीब न होगी तो आप अपने बख्त के बड़े आदमियों को खूब प्रेट भरकर गालियाँ देना शुरू कर दें, चाहे लोग भी आपकी नुस्काचीनी करे पर आपकी बेहवाई की बहादुरी इसी में है कि आप मैदान से इच्छभर भी

न खिसकें। इससे यह होगा कि सबसे पहले हरखासो आम में आपके नामका खासा प्रचार हो जाएगा।

(२) दोयम—अब उस बड़े आदमी की बातों पर, चाहे वह भूठी हों या मन्त्री इसकी परवाह आप मुतलक न करें, अपनी बेहयाई की बहादुरी से सुफैद भूठों के तरक्कस से नगे लफजों के तीर चलाइए, इसकी फिक्र न कीजिए कि तीर-तीर होती है या 'तुक्का'-बराबर चलाते जाइए, कभी तो लगेगा। इससे यह फायदा होगा कि रक्षण: रक्षण: लोग आपके ख्यालों की ओर झुकने लगेंगे।

(३) सोयम् आपको कुछ और कुर्मानियां करनी पड़ेगी। जब देखिए लोगों के दिल पर मेरी तीर काम कर रही है, और ख्यालों की खासी चर्चा हो रही है, तो आप उन बड़े आदमी पर अपने लगाये इलजामों का सबूत देने के लिये डट जाइए। यहां जूते बर्दाशत करने से लेंकर, निहायत नीच और जलीलशुदा बातों को बर्दाशत करने की पूरी दिलावरी दिखाइये, सर से खून की भारा वह चले, कोई मुजाइका नहीं। बरसरे बाजार आप पर जूते पढ़ें—कोई फिक्र नहीं। भरी मजलिस में आप जलीलोखवार हों कोई परवाह नहीं, पर तारीफ आप की इसी बेरामी की ताकत में है, आप अपने बयान पर सावित कदम रहिये। जलील होते रहिए, और अपनी बातें रटते रहिए, सौ नहीं तो दो भी तो आपको बड़े मान लेंगे। इस कदर कुछ दिनों के बाद इनकी अद्द बढ़ जाएंगी, और आप "बड़े आदमी" हो जायेंगे। इस बात का ख्याल रखियेगा कि बड़े आदमियों के दुश्मन दुनिया में बहुत होते हैं, जहां उन्हें एक बेहया बहादुर मिला कि सब उभड़ पड़े।

नुस्खे:—

(१) जब तक आँखों का पानी न गिरेगा, आप 'बेहया बहादुर' हरगिज नहीं हो सकते, इसलिये आँखों का पानी बर्छान करने के लिये सुबह शाम कड़ुआ तेल में लाल मिर्च मिलाकर एक माह तक अंजन लगाइए ।

(२) जब तक दिलों में लेहाज और मुरौवत, सदाकत और इमानदारी की बदबू बनी रहेगी आपमें भूठ बयानी (असत्य भापण) की ताकत आही नहीं सकती, इसलिये गुड़ और भट्ट को पीस छानकर शुबह शाम और दोपहर दो दो बोतल पीजिए और कुछ दिनों तक किसी वकील की ताथीदी कर लीजिए ।

(३) जब तक दिमाग में शराफत और इन्सानियत के कूड़े भरे रहेंगे, आप में नंगे लप्जों और फोशा बातों के करने की दिलावरी आही नहीं सकती, इसलिये अहले शुबह और सोने के बक्त पक्के पाव भर गधे की लीद को पक्के दो घट्टे दिमागशरीफ पर खूब मलवाइये । काश सर में झुल्फ हो और उसे कटाने की ख्वाहिश न हो तो । "फस्त" खुलवा लीजिये । ताकि मालिश का असर दिमागी तह तक हो । बहुत अच्छा हो आप शाम के शाम भट्टी खाने—ताढ़ी खाने—या चक्केवाली मालजाहिनों के यहाँ पक चकर लगाया करें ।

(११०)

कसम पीर मुर्शीद की, ख्याँ बोकरात अलीके मजार की !
जन इतनी दवा कीजिए, दुनियाँ क्या गैब (अदृश्य) की भी
इतनी ताफत नहीं जो आपको 'बड़ा आदमी' होने से रोक
दे । यह आजमूदा तुस्ता है ।

आपका—

तिवारीजी—

टेलीफोन नं०—१७

हॉलो—!

सेनिटोन वाली सुकुमारी देवी ने मुझे कहा—पंडितजी, सिनेमा आप जैसे धर्मज्ञों के वास का स्थान नहीं, बगैर-समझे-बूझे जो आप अपनी देवी का “नथ” बेचकर बास्थे दौड़ आये, बुरा किया। खैर यह लीजिये अपनी महारानी को दे दीजियेगा। इसके बाद भाई उस सहृदय महिला ने अपने साढ़े बारह तोले का “नेकलेस” उतारकर मेरे हाथों पर धर दिया और मैं बास्थे से रफू-चक्कर हुआ। दूसरे दिन ज्याही सुबह उठकर बाहर बैठक मेरे चौको पर बैठा कि एक सज्जन लाल्हा पारसी काट, ऊँची दीवार की काली दीपी पहने, मुझसे पूछने लगे—ज्यां साहब, पंडित तिरकांख तिवारी का दौलतखाना कौनसा है? मैं मुस्कराता हुआ बोला—“मेहरबानमन! दौलतखाना तो इस सारे नगर में एक भी नहीं हैं हां, वह कलकत्ता की ‘ट्रेजरी आफिस’ में जरूर है।”

वे सज्जन तनिक ऊपरे से बोले—साहब दौलतखाना माने, दौलतों का घर ही नहीं, बल्कि माने मकान से भी है, इस कदर तो महज शिष्टाचार और आदर के लिहाज से

बोला जाता है । सब है, देहाती लोग समझ से बहुत कम सरोकार रखते हैं ।

मैंने कहा—जी हाँ, वे किसी दरिद्र को सम्मान करने की बेवकूफी नहीं करते । इसलिये वे जरूर नासमझ हैं ।

‘अजी साहब—!’ वे कुछ भलाये से बोले । मैं आप से मूच्छाहिसा करने नहीं आया, जिनका मकान मैं पूछ रहा हूँ अगर आप जानते हों तो कृपाकर बता दीजिये वर्ती कहिये, मैं अपना रास्ता लूँ ।

मैंने कहा—जनाव जिमकी लकाश में हैं, वह मुजस्मि म-जिस्म आपके खबर हाजिर है, आड़ा कीजिये ।

वे सहर्ष बोले—आख्खाह ! आपही तिवारीजी हैं ? तो खूब मिले । पालागन ।

मैं ही क्यों चूकता, मैं दुगने उत्साह से बोला—आइये, आइये, विराजिये र कहिये, कष्ट का कारण ।

वे आपनी टोपी चौकी पर रखते व्यस्ततायुक्त थोले—अजी तिवारीजी, मैं तो आपको ढूँढते-ढूँढते मर गया ।

मैं—जी हाँ, मुझे भी महाशोक है, अभाग्यवश मुलाकात भी हुई तो आपको प्रेतात्मा से ।

वे कुछ घबराये-से बोले—“अरे तो क्या सचमुच आप मुझे मरा ही समझ रहे हैं क्या ?

मैंने कहा—अजी साहब, मैं तो वही समझूँ जो आप मुझे बतायें ।

वे—अरे मैंने तो वार्तालाप के ढंग की एक बात कहो, बसका यह अर्थ नहीं, कि मैं सचमुच मर ही गया ।

मैं—खैर क्षमा कीजिये, वारीलाप के हुंग में भी झूठ बोला जाता है, यह मुझे आज ही अपनी इस बयासी साल की उम्र के बाद आप सरीखे विद्वान मण्डन के समागम के सौभाग्यवश ज्ञात हुआ । आहोभाग्य ! हाँ, किस कारण कष्ट किया, कहिए ।

वे—मैं एक आखबार निकालना चाह रहा हूँ, एक पुराना हैण्ड प्रेस भी खरीद लिया है, और मैं चाहता हूँ, मेरा पन्न, क्या आपने रूप रंग में, क्या आपने बनाव-सजाव और सामग्री में, सब से एक और निराला हो, और उसमें आप जैसे विद्वानों की कृपापूर्ण सहायता की महत्यावश्यकता है । वस इसी कारण हाजिर हुआ हूँ ।

मैं—“आखबार” निकालने की बात तो सचमुच आपने एक ही सोची ! और मैं समझता हूँ, इसमें बढ़िया ठाटदार रोजगार आजकल कोई है भी नहीं ! इसमें न एम० ए०, बी० ए० बनने की कबाहट है, न उद्यादा तूलकलाम की जहमत । और हपये तो मिलेंगे ही, भाश ही हिन्दी-उद्घारक और उसके सोल ब्रेजेन्टटिव का ग्विताब मिलेगा भी अलग । दम खौफ भी खायेंगे, दस ढप्पत भी करेंगे, “आप सम्पादक जी हैं !”

वे सोत्माह प्रमुचित हो गोले—जी, इसीसे तो मैट्रिक फेल कर कर्की सुमरी तक हूँहते-हूँहते लैंगड़ा हो गया, फिर भी वह न मिली, तब लाचार होकर मुझे इस फैसले पर पहुँचना पड़ा ।

मैं तनिक तत्परता से बोला—फैसला आपने आपने हक में निरायत आला वो उम्दा तज्जीज किया है ।

वै बोले—तब पेपर का प्रचार किस प्रकार हो, दस भले-भले राइटर कैसे हाथ आवें, और साथ ही घाटा भी न हो। अब आपसा गुणज्ञ, अनुभवी और सहायक मुझे कौन मिलेगा जिससे परामर्श लूँ ।

मैंने कहा—सुनिये भाई, आजकल पेपरों के प्राण हैं विज्ञापन। लेहाजा काफी से काफी तादाद में आपको विज्ञापन बटोरने पड़ेगे, जिससे पेपर के पौधे की जड़ पाताल तक चली जाएगी। अब विज्ञापन बटोरने का जो मौलिक नुस्खा हमने तैयार किया है, कसम कुण्डी-सॉटे की, कोई भक्ति रूपन में भी न बर्याया होगा। आजकल प्रचुर विज्ञापन देने वालों की दूकान की साख और ईमानदारी की सिर्फ सनद भर हीं तो सम्पादक देते हैं। आप वैसे विज्ञापनदाता का सचित्र वंशपरिवय, परिवार-परिवय, दूकान-परिवय, और उसकी उत्तमता सब छापिये। अखबारों में “चेहरा” [फोटो] लृप जाना कम खुश-किस्मती की बात नहीं है। फिर देखिये, विज्ञापनों का आंधीसी उठ खड़ी होगी आपके दफ्तर में। बाकी रही अच्छे-अच्छे लेखकों की सहायता, इसका सरल—एकदम सरल तरीका यह है कि जिन्हें भी आप अच्छे और और अपनी पत्रिका के योग्य लेखक समझें, खटपट एक खत उत्तकी खिदमत में पठा दें—“हम श्रीमान के सचित्र जीवन चरित्र अपने पत्र में छापना चाह रहे हैं, कृपया चित्रयुक्त अपने प्रातः-स्मरणीय जीवन के कुछ ‘हिन्ट्स’ भेजने की अनिश्चय कृपा करें। श्रीमान का लेखन रेट क्या है ? यदि कोई उत्तम रचना प्रस्तुत हो तो कृपया उसे भी भेजें।” फिर देखिये कि तने लेखक जूझ मरते हैं। हाँ कुछ पैसों के पक्के ब्रह्मपिशाच भी निकलेंगे जो बगैर पैसे लिए एक हुरफ़ भी न लिखेंगे, पर

उसकी क्या चिंता ! पेपर के प्रचार विस्तार का दूसरा पहलू है, नव लेखकों का लेख। जब इतने लेख आवें, उन्हें लिखिये, 'लेख मिला' उसमें कुछ सुधार सापेक्ष है, पत्र की दशा बड़ी शोचनीय और "स्टैन्डर्ड" बेहद ऊँचा उठा हुआ है, इस कारण परिथिति और जटिल हो जाती है। हाँ, यदि आप पत्र के कम-से-कम दो ग्राहक भी बनाकर मेरे साथ ही हिन्दी की एकमात्र सर्वाङ्गाण सुन्दरी, मेरी मनोरम पत्रिका भी भी सहायता करें तो पत्र का पृष्ठ संख्या बढ़ाई जावे, और आप लोगों के लेख छपने लगें ।"

सभके साहब, ये सब नुस्खे हैं, पत्र-प्रचार के, उसके अटल अस्तित्व के और साथ ही रुपये भी बटोर मारने के ।"

मेरी ऐसी तजुरी-शुद्ध सलाह श्रवण कर वे सज्जन बड़े प्रसन्न हुए। आशा है अगले मास से वे अपनी पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ कर देंगे आर मुके भी कुछ प्राप्ति हो जाया करेगी ।

आपका—

तिवारी जी ।

टेलीफोन नं०—१८

मेरे आजीज दोस्त !

क्या बताऊँ उम दिन सारे आरा-टाउन में एक बड़ा भीषण हाहाकार, संगीन तहलकान्सा गच्छ गया । जब ठीक १२ बजे दिन में सारी नगरी असावस्या की राजि की खाँति घोर अन्धकारपूर्ण हो गई, अपनी बढ़किस्मती सुनिष्प, उम दिन मैं भी आरा ही मैं था । नगर-निवासियों की सूरत परीशान हो गई । ‘या मेरे मौला ! अब कैसी कहरे कथामत ! किसी साल बाढ़ ने “आरा” पर “आरा” चलाई, किसी साल भूकम्प ने सारे विहार को विद्यावाँ बना डाला, आज यह क्या आफत !’ सारे पुरजन भागते हुए रमने में दीड़ पड़े । उधर से धांधरे (गाऊन) और चपकन, हैट और पैण्ट बुटनों तक उठाये वकील, मुख्तार, हाकिम, हुक्माम बेचारे भी भागते-हाँफते रमने में ही पिल पड़े । आजीब हंगामा था । विचित्र व्यग्रता का दृश्य था । सबके होश उड़नदूँ हो गये थे । किसी को पनाह की सूरत नहीं सूझ रही थी । बीबी-मियाँ में, बच्चे-बाप में, बुढ़िया-बेटे में चिपकी “हरे राम-हरे राम” “या अल्लाह-या अल्लाह” चिल्ला रही थीं । प्रतिक्षण अन्धकार घनीभूत हुआ

जा रहा था । कलेक्टर साहेब ने आङ्गा दी—“मसाले जलाओ !” टाचों की सहायता से कुछ लोग डटोलते हुए शहर में गये, तीन-चार टीन किलोमीटर तेल और ५-६ थान मार्कीन डठा लाये । दनादन मसाले बननी शुरू हुई और एक-बार ही करीब ५०० मसाले जल उठीं । अब देखने में आया कि सारा टाउन रमने में ठसा हुआ है, सूई रखने तक की जगह नहीं है । साहेब वहादुर ने अपनी दूरबीन लगाई और एकाएक वे चीज़ चढ़े—“ओ माई गौड़ (God) ! यह तो सारा आकाश नीचे को दूटा हुआ चला आता है । अब टाउन ‘सेफ़’ नहीं रहने सकता !”

“मौलवी कमरुद्दीन साहब अंजली से मुँह पांछते चिल्ला पढ़े—” जलजला—जलजला ! यही जलजले का दिन आगया । नवियों ने जिस बात की खबर किताबों में की थी, वह कथामत, वह कहरे-खुदा आज नाजिल हो गया । या अल्लाह रहम कर !

पण्डित धोंधा मिश्र ज्योतिषाचार्य ने तीन धूसा जोर-जोर का अपने खल्वाट खोपड़े पर जमाया और चिलख पढ़े—प्रलय ! प्रलय !! इतना शांघ प्रलय !!! अभी तो कलयुग का द्वितीय चरण मी न बीता ? हरे भगवान् ! कहता था—गांधो की आंधी, आँखों का आलिंगन, एक दिन धरा-आकाश सम्मेलन करा के और संसार का संहार कर के ही दम लेगा, सो दिन आज परतच्छ हो गया !”

अब क्या ? अब तो आकाश सर पर ही आगया ! सारे प्राणी विकल हो आर्तनाद कर चढ़े । “वह आया—यह आया !! अब तो सर से दो ही हाथ ऊपर रह गया । हे

भगवान् ! या खुदान-रसूल ! ओ माई गोड !” का बड़ा कहण विकल चीत्कार करोड़ों कंठों से निकला, फिर सब शान्त हो गया। तीन घंटे की धैहोशी के बाद लोगों ने महसूस किया कि हम अभीतक जिन्दा हैं, और किसी भारी से शामियाने ने हमलोगों को ढँक रखा है।” भीतर ही भीतर लोग चलने और इस विशाल विस्तृत शामियाने से बाहर निकलने का मार्ग हृदने लगे, परन्तु लाख सर पटकने पर भी मार्ग न मिला। सब धूम फिरकर आपस में ही टकरा पड़ते थे। विचित्र भग्नाला था ! अब दम धुटने की नौवत आई। सबोने राय तय की कि सारे आदमी एक ही बार खड़े हों शायद कहीं से कुछ सूराग निकल आये।

“श्रीमहाबीर स्वामी की जय” या “अली” का शोर-सा मच गया और सबलोग एकसाथ ही खड़े हो गये। पर अभी-रथ ! फिर भी कहीं कुछ रिहा होने की गहर न निकली। हाँ इस “टेंड-अप” से यह फायदा जखर हुआ कि अब धुट-धुट कर मरने की फिक्र जाती रही, पर अब पर्वीशानी यह सबाह हुई कि अबतक “ठड़ेसरी बाबा” बना रहा जायगा और फिर यिन्हा अन्न पानी का शरीर भी कब तक अड़ा रहेगा। एक तबालत गई तो दूसरी शामत सबाह दुई। फिर राय हुई—यारो अब तो बगैर गैबी इमदाद, यानी ईश्वरीय सहायता के प्राण बचने के नहीं, अगर आयु होगी तो वही सिरजनहार बचायेगा, नहीं तो “मुर पूत की आशा ही क्या ?” गुहराओ उसी को, मरना ही है तो “धाप-माँ” चिल्लाकर क्यों मरें ?”

अब साहस सुनिष्ठ प्रार्थनाएँ, उनके तर्जे, उनके उच्चारण, हिन्दी, उर्दू, बंगला, कारसी, अरबी इङ्ग्लिश सब भाषाओं में उसी खड़े से शामियाने के तले जाल में फँसी चिल्डिये की तरह

हँके लोग, अपने अपने राम को पुकारने लगे। दिन कब हूबा, रात कब आई, यहाँ तो “सब घन बाईस ही पसेदी” वाला मजमून था। वही अधिकार ! धोर अन्यकार !! १५-१६ घण्टे तक लोग बेचारे प्रार्थना के नाम पर विलविलाते रहे। सहस्रा मालूम हुआ कोई चीज ‘घन घन’ बोल रही है और यह जालिम शामियाना धीरे-धीरे ऊपर को उठ रहा है। अब क्या जैसे लोगों के प्राण मर कर लौटे। और भी अधिक नीत्र और उग्र स्वरों में प्रार्थनाएँ चिल्लाई जाने लगीं। देखते देखते अब वह शामियाना विलकुल ऊपर उठ गया। सर्व प्रथम हवा आई, फिर रोशनी। आह, मानों अन्धे को आँख मिली।

अब जो देखा गया, बीस-पचीस हवाई जहाज “केन” पर उम अभागे शामियाने को टाँगे सुंदूर आकाश मार्ग में जा रहे हैं और उस शामियाने का एक हिस्सा ब-जिन्स पैर की राकत का रमने से दो बाँस ऊपर उठा है। लोग बड़े आश्चर्यमय होकर उसे देख रहे थे—“आखिर यह क्या बला थी, जो पूरे १५-२० घण्टे तक हमारे प्राणों को “अब-तब” में डाले रही !” इसकी बाबत पण्डित और मुल्लाओं से—क्योंकि आलक्ष्य-अबोध और ईश्वर सम्बन्धी विषयों के यहीं तो विशेष प्रतिनिधि या माध्यम ठहरे—पूछताछ होने लगी। य० खरबराचारी गो-बरणबत अपनी चुटिया फटकारते हुए बोले—“हमारी समझ से तो यह हमारे विराट रूप महामहिम महाप्रभो का श्रीचरणाविन्द है।”

“—जी नहीं—” मौजाना बोकरातअली अपनी लम्बी दाढ़ी को दोनों हाथों से मलकर उसे नोकदार बनाते हुए बीच में ही बाधा देकर, साधिकार बोल उठे—“आपकी यह महज

खाम ख्याली है। यह “चरन” “नाद” बुछ नहीं। सुनिये साहबान ! हमारी किताबों में खबर है—यह अर्श (आकाश) सात तबक, यानी सात तह का है, जब जलजला या कथामत नाजिल होगी, तब एक के बाद दीगर सातों तबक टूट-टूट कर जमीन पर गिरते जायेंगे और दुनियाँ की दृस्ति नेस्त हो जायगी ।

गिर्स्टर महामाना मुर्केजी साइटिफिक, अपना बहुत मुष्ट महजाते हुए परमोपेक्ष्य भावेण सहास्य—पर गम्भीर मुख से बोले—“हा, हा, हा, हा, मोलाना शाहीय, आशमान का दुकड़ा ठो टानने का “पावर” एरियोलान को नेंड होने सकता । आर वह ताबाक कपड़ा के माफिक मोलाईस नेंड होगा । आशमान दा तो शून्य पदार्थ है, उशमें ताबाक काहे को बुशाने भाँगेगा ?

“तब क्या है यह ? जरा बताइये तो ?” बेहद तैरा में मौलाना बोल गये ।

मुकर्जी शामा फिर मुस्कराते हुए बोले—मोलाना शाहीब, येंडे “सबजैकट” ठो इस माफिक छोटा नेंड जो शिखीर आपको जोल दिया जाय । इशमें वहोत “धिक” करने हागा ।

पं० महोदर मिश्र ‘तर्करत्न’ ललाट सिकोड़ कर बोले— और यह विषय प्रचुर तर्कनीय भी है कि यह है क्या ? हमारे ग्रन्थों में आकाश को भी एक लोक कहा गया है, जहाँ पितरों का वासस्थान है । और वहाँ चन्द्रलोक, सूर्यलोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक आदि सप्तलोक हैं । अति संभव है, यह पदार्थ इन्द्रलोक का ही शामियाना हो और आचानक इसके खम्मे टूट पड़े हों तथा लोगों के संभालते-संभालते यह भू-पतित हो गया हो ।

(१२१)

सहसा आकशमार्ग में यह ध्वनि गूँज उठी:—
‘सज्जनो !

ठाकुल निन्दित न होओ, न यह अर्श का तबक है, न
विराट महाप्रगु का चरण, न वैज्ञानिक विषय, और न इन्द्र-
लोक का शामियाना, अपितु यह है—“भैया कुम्भकर्ण का
पाथ जामा” जो “स्वर्ग गंगा” से स्नान कर लौटते समय धोखे
में उनके हाथ से छूटकर पृथ्वी पर गिर गया। निश्चिन्त
होओ !”

मैं चिलता पड़ा—साहब ! जरा उन्हें हुशियार कर दीजिए,
उनका धोखा, हमारे लोगों को बवाल हो जाता है। अब जो
फिर कभी उन्होंने ऐसा धोखा किया तो बड़ी आफत होगी।

आपका—

मिं तिवारी ।

टेलीकौन नं०— १९

जरा कान पिचकारी से साफ करा के सुनिएगा !

सच पूछिए तो इस “बैकुण्ठ” “बहिश्त” और “हीमेन” तथा इसके कल्पनालोक प्रसूत महज भूठी खृषियों और इसकी छवि-शोभाओं को कोरी कवित्वमयी भाषा के आकर्षक वर्णनों से लोगों को खूब भरमा-भटका कर और उन्हें उल्लू फँसाकर अपना बल्लू सीधा किया गया । बास्तव में न कहीं बैकुण्ठ है है न बहिश्त, न हीमेन । यह तो धर्म-न्यवसायियों को अपनी अपनी दूकानों के साइनबोर्ड हैं, जिन्हें लटका कर उन्होंने लोगों का गला घोट डाला । और मजा यह कि इस “लटकन-मंच” में गुणी, अगुणी, मूर्ख, विद्वान् सब गुड चिंटें से चिपक गये ! परलोक प्राप्ति की यह विकट लालागित लालसा इहलोक के सुख, शान्ति, सन्तोष और सद्भाव सबको लकड़ लेकर सात समुद्र पार हाँक आई ।

मालूम होगा, इस बैकुण्ठ के महादल-दल में—और तो और, अपने देश की बहुत बड़ी स्वराज्य प्रदायिनी संस्था “काङ्गरस” भी पूरे ‘रस’ (भीड़) में फँस गई है, जिसमें देश के सिर्फ़ आला दिमागों का ही आखाड़ा है । यह साम्प्रदायिक-निर्णय का बबाल, जो बहिश्त, बैकुण्ठ पहुँचाने की

स्पेशल ट्रेन है और जिसमें धृत्यकर कॉग्रेस तड़प रही है—“खुदाखाने” की ही रवानगी के लिये तो एक मजेदार परी-शानी है। यह “फिर्केबाजी” की सीढ़ी—मिट्टर गॉड (God) साहब के आसमान यानी अल्लाह के अर्श पर ही चारोंपाँव जा पहुँचने के लिये लगाई गई है।

यह वैकुण्ठ प्राप्ति की ही लालायित लालासा का महाघोर सुपरिणाम है कि कोहाट, कानपुर, काशी, कलकत्ता और शाहाबाद में “दाढ़ी चुटिया” नोच-चौथ और “दण्ड-मुरड” महासम्मेलन हुआ, और आज भी हो जाया करता है, और जब तक यह अभाग वैकुण्ठ-बहिश्त हमारे बीच खड़ा रहेगा यह “लट्ठ-प्रकरण” कभी बन्द होने का नहीं।

परमेश्वर पाँडे का भव्य भवन (वैकुण्ठ) खुदायियाँ की हरी इमारत (बहिश्त) और “गॉड” साहब का सुफैद बंगला (हीमेन) ने ही, हिन्दू मुसलमान, पारसी किस्तान, हृत-छात के द्रुष्टमूलक भाव उत्पन्न किये और इसी भयानक भाव ने आपके गले में इसमा छालकर आपको रसातल पठा दिया। बहिश्त और वैकुण्ठ की इश्क ने ही “मुसलिम लीग” “जमायतुल उलेमा” “खेलाफत कुमैटी” “भोहम्डेन-पशोसिष्यन” “हिन्दू सभा” “हिन्दू हित रक्षणी-समिति” “आर्य प्रतिनिधि सभा” “सनातन धर्मोद्धारणी सभा” “शुद्धि सभा” “हरिजन संघ” और “जात-पात-तोड़क मंडल” आदि अनेकों—अनर्थकारिणी संस्थाओं के जन्म दिये, जिसके चलते क्या २ अनर्थ उपद्रव न हुए और हो रहे हैं, और आगे भी होंगे। न्वासी शंकराचार्य जी ने हजारों हजार जैनियों को बोरे में ठुसवा कर गया में इसलिये फेकवा दिया कि ये अभाग वेद वर्णित वैकुण्ठ के विरुद्ध थे। करोड़ों

हिन्दुओं के सर, इस्लाम के “स्पेशल प्रेजेन्टेटिव” अधीरंगजंब ने इस कारण कटवा डाले कि ये नामाकूल काफिर उसके खुदा रसूल की बहिशत के खवाहीं न थे। यूरोप के सैकड़ों ग्राम, नगर और लाखों नर-नारियों को जीते जी जलाया गया, युप्रसिद्ध वैज्ञानिक “गेलियों” को फाँसी के फँदे में लटकाया गया, कबल इस महाअपराध (!) पर कि वे खुदा के लाले लड़के के “हीभेन” में जाना नहीं चाहते थे और उनकी “बाइबिल” वर्णित वातों के विरुद्ध थे। मंसूर को इस कारण सूली देदी गई कि वह बदकिस्मत बहिशत, वैकुण्ठ का नहीं विनिक “अनलहक” (तत्त्वमसि) का आशिकंजार था। कितना गिनाऊँ इस आफत के मारे, ‘स्वर्गस्तेह’ के फितने !

सच पूछो तो दादा यदि यह वैकुण्ठ-बहिशत “दाल भात में मूसलचन्द” की तरह हमारे बीच न आ उलझता, तो आज हमारे घर छप्पर फाड़कर “स्वतंत्रता” देवी आ धमकतीं और फिर तो वे मुख्या नायिका की भाँति ढंडों से मार भगाने पर भी न भागतीं। स्वराज्य भइया अपने दरबाजे की दरबाजी करते। भगर यह वैकुण्ठ बहिशत जो न कराये सब थोड़ा है ! इसी अभागे वैकुण्ठ-प्रेम ने सात करोड़ सातु वावाओं को बेकार कर कोढ़ी बना दिया। इसी वैकुण्ठ की चाह ने लाखों कुल-कामिनियों को कोठों पर ला बिठाया। हजारों लाखों एकड़ जमीन, करोड़ों अरबों की जायदाद मंदिर मस्जिद और गिरजाघरों में बुस गई, जिससे बेचारे बेशुमार बे-खाना बे-दाना गरीब जीते-खाते, और उन महजातों में सुख की जीद सोते। न कुम्भ-स्नान के कन्पिटीशन में जाने जातीं, न काशी करवट में कपार फोड़वाना पड़ता, न हनुमानगंडी में औरतें उड़ायी जातीं, न रेल में दुर्गति होती, न धर्म प्रचार

की आड़ में देश भाड़ में जाता, न बैटा-बैटी के व्याह में बर्बादी होती; न बाबा दादा के श्राद्धतर्पण में तबाही आती और न परहान्पुजारी इस प्रकार मुरठंडा बने आपनी लोदों से अपने लोगों को हुरपेटते चलते ?

मगर मेहरबान !

जिस बैकुण्ठ बहिरत प्राप्ति के लिये ऐसी होड़ मची है, इस कदर जाँफिरानी और परीशानी सुखी र कबूल को जाती है, उस बैकुण्ठ में है क्या ? तनिक लगे हाथों यह भी सुन लीजिए । बहाँ है, जीवनानंद की सुख सामग्रियों का गच्छ अभाव ! आठों पहर तुलसी और रुद्राक्ष की मालाओं की खटखटाहटों, और सत्संग की चिल्लाहटोंसे कानोंकी किलियाँ फटी जाती हैं । भगवद् चर्चा, और परमात्मा चिन्तन के नाम पर ऐसी सूखी र कहीं विलकुल नीरस गुप्तगू की जाती है कि सुदा की पनाह ! मैं तो पहले भाग खड़ा होऊँ इस बैकुण्ठ की बला से ! न तो इन कोरे शुष्क आलापों में कहीं रस-आलंकार का मजेदार वर्णन का पता रहता है, न कहीं दिल को लोटपोट करने वाले रूपक और उपमाओं का पुट ! अस वही सिर्फ सूखे ब्रह्मज्ञान की बकवास ही तो स्वर्ग है । कहीं बाबा तुलसीदास ‘सेशराम जै सेत्तराम !!’ चिल्ला र कर आकाश फाढ़े जा रहे हैं, तो कहीं “मुरदास” राधेश्याम जै राधेश्यामकी रट से पाताल को कँपा रहे हैं । कहीं कबीर

की ‘साइर्वाँ भोरा बानियाँ’ की पुकार है, तो कहाँ नानक का “बोलोजी वाह गुह” का चीत्कार है। कहाँ चैतन्य “होरे-कुष्ठो ! होरे कुष्ठो” कहते आपनी बुद्धीती में भी भातुमा थिरक रहे हैं, तो कहाँ दयानंद के “ओरम्” के मारे नाक में दम है। कहाँ उधव का वह ब्रह्मज्ञान वाला पुराना पचड़ा छिड़ा है तो कहाँ “रीखेसर” लोग कमर तक “दाढ़ी” (दाढ़ी का बृहत् संस्करण) लटकाये “सगुण” “निर्गुण” भाव स्थापन की बफवाद में जूझे मरते हैं। इन्हों शुष्कजीवी मन्तों का समागम और इसके आराधना मंत्रों की धार गुरुगम्भीर चिल्लाहटों की सामूहिक ध्वनि ही तो स्वर्ग है।

बहिश्वर—! बहिश्वर में भी कम नीरसता नहाँ है। इजरत मुहर्खाद, नृह, ईसा और मूर्या की ‘ला एतादी इलिललाँ’ की वह “हुँकार” मरी आवाज और वह दिन भर की उठने बैठने और कभी दो जानू हो लेट जाने की नमाज” नाम की मशक्कत ! क्षण २ पर “अललाहो अकबर” की देतहाशा चीख-पुकार जैसे कहीं मार पड़ी हो। सो साहब अम यही तो बैकुंठ और बहिश्वर के कारखाने हैं। न कहीं खुदादिली का नामोनिशान है, न कहीं ताजगी की बूँधास ! वही चौथीस बन्दे गुहरमी सूरत वाले काफला का एक छत्राधिकार !

आव नरक में आइये ।

हबड़ा, लखनऊ, कानपुर, अम्बई के रेलवे स्टेशनों और

बन्दरगाहों सी यहाँ खासी चहल पहल है। रोज ही हजारों, लाखों लोगों की खुश-आमद का ताँता लगा ही रहता है, और उनके—“केसेज” (मामला) उनके “कॉस” (जिरह) और—जजमेट (फैसला) सुनने ही लायक होते हैं। उनके बयानात और गवाहियाँ लुटफे-जिन्दगी से शराबोर रहती हैं। जो आते हैं खड़ी जानदार तथियत, निहायत खुशजुमा फवन और बेहूद निराली नोक मोंकवाली अदा लेकर, और मजा यह, नरक में भी इनकी चुहलबाजिया बंद नहीं होती जैसे राजनैतिक बन्दियों का गाना, जेल और सेल की हथकड़ी तथा ढंडा बेड़ी भी बन्द न कर सकी ।

अब भीतर—साक्षात् नरक धाम मे पधारिए ! वह देखिए वहाँ गोहरजान अखाप रहीं हैं। वहाँ छुट्टनजान का नाच हो रहा है। कहीं यारों के कहकहे लग रहे हैं। कोई अपनी यादे माशूक के गमेहिक में भजे ले लेकर उसकी मीठी दास्तान सुना रहा है, तो कहीं शेर-बयानी और कविता पाठ हा रहा है। कहीं सैकड़ों “हिजड़े” “लहरा” उड़ा रहे हैं, तो कहीं खटकिने—“आज काल बा तोहरे जमाना दे साँवलियाँ” की ताजे उड़ा रही हैं, कहीं शहनाहियाँ “गोरी” की मीठी “गत” अलाप रही हैं।

बैकुण्ठ की भाँति यहाँ न वह शास्त्र-पुराणों की नीरस और निरर्थक बकवास है, न जो उच्चने वाली चिल्लाइटों कि चिल्लपों। “नरक” के यह सब जानदार जौहर हैं; नरक

की यह सब न्यासते हैं ! “नरक यात्री” पृष्ठवी पर तो चारों हाथ आनन्द लूटता ही है और “नरक” में भी ईश्वर, परमपद, बहिशत और रसुले खुदा को नकधुनौशल से पाको साफ रहता है। और सबसे बड़ी बात, बड़ा फायदा यह है कि इस नरक प्रचार से हमारे मारे नैतिक, सामाजिक और धार्मिक फिल्मे भी आपही नष्ट हो जाते हैं। लेहाजा आप लोगों मे मेरी पुरजोर सिफारिश और जबर्दस्त अपील है कि नाना उपद्रवकारी इस बाहियात वैकुण्ठविहिन का बायकाट और नरक का सप्रेमालिङ्गन ही हमारे लिये घोर सुखकारी तथा प्रचंड आनन्ददाता है ।

आपका—
मि० तिवारी—

देलीफोन नं०—२०

बेल माइ डियर !

दुनियाँ चाहे इस बात को माने या नहीं, पर मैं तो बाबा
यह चारों पाँव मानने पर तैयार हूँ कि इस अंग्रेजी राज ने इस
गिरे हुए जंगली ! हिन्दुस्तानियों को ठोक पीटकर आदमी
बनाया । वह अच्छे २ मौके के उपयोगी सुधारों को प्रदान
किया, जिस “रिकार्ड” को हिन्दुस्तानी भक्तुवे लोग स्वतन्त्र में
भी न ‘बर्झै’ होंगे । ऐसे रिकार्ड को हमारी दयाशालिनी
तथा माई-याप—दोनों की ही स्वरूप धारिणी—सर्कार ने
हमारी अन्धी आँखों में अपनी बन्दूक का कुन्दा ठूस ठूस कर
बता दिया—दिखला दिया, ऐ मियाँ सूख राज, नेटिव
लोग ! तुम्हारा कल्याण, तुम्हारा सुधार इसमें हैं । तुम क्यों
अपनी पुरानी और निकम्भी रस्मों-रिवाज के ढुटहे छकड़े पर
धूल फौंकते खुरक रास्ते भागे जाते हो ! भगवान् ऐसी प्रजा-
वस्तुला सरकार को सहस्रों वर्ष इस मुल्क हिन्दुस्तान की बाद-
शाहत बखरों, वह “शावत् चन्द्र दिवाकरो” अपनी घोर
सुकृपाओं के मंगलकारी “सुधार” से हमारा उद्धार करती रहे,
हम तो भाईजान रोज सुधर तड़के उठकर सब कासों से पहले
आल्जाह मियाँ से यही दोआ भाँगते हैं ।

आप घबड़ायेंगे, सरकार ने हमारा क्या सुधार किया ? सदियों से हमें पद्धति, पद-पीड़ित लनाए रखी, हम सैकड़ों वर्ष की दासता ढोने के बाए भी हुक्मत के लिये “अनफिट” ही समझे गये, बगैरह २ । तो अवश्य बात तो यह है कि कोई आपके सर का बवाल अपने सर लेले और आपको विलक्षण बेफिक “खाओ और ममत रहो” का जानन चितान के लिये छोड़ दे, तो यह उस भक्षेभानम भी नेकनदिली का बेनजीर मिसाल है । दोयम, यह बात ठीक है कि आभी आप में “हुक्मत” करने का “पावर” नहीं आया । सायम यह कि अभी आपको आदमी बनने में घटी देर है, गो शकल इन्सान का पा गये तो क्या ? आप जरा अपनी निकम्मी रुद्धियों और वृथ के कायदे कानूनों की नसें तो टटोलिए—लाहौल विज्ञा कूपत तौथह-तौथह—हिमालय से भी बड़ा, भगुद से भी गहरा और संसार से भी ज्यादा लग्जा चौड़ा आपने अपने खतरेनाक उसूल बना रखे हैं । दूर क्यों जाइए, घर से ही टटोलना शुरू कीजिए । आप ने औरतों के आजाद जीवन को पातिव्रत्य के इस भजवृत खँडे में बाँध रखा है कि जरा बैचारी टस से मस नहीं हो सकती । हम पूछते हैं किसी की जिन्दगी को, किसी कि आजादी को आपको बाँध रखने का क्या अधिकार है ? अजी साहब, उन्हें पिंजडे से आहर छोड़िए, फिर देखिए उनकी कला बाजियाँ ! परन्तु फिर मुझे रोना आया अपनी बदनसीबी पर ! क्योंकि इस मुर्ज मुर्लक की स्त्रियाँ भी तो पूरी बागड़ हैं ! आहे आप उनके सारे “पर” खोल कर मुक्त वायुमंडल में उड़ा दीजिए फिर भी वे भेहरा कर जमीन चूम ही लेंगी, या घर के बिलोंमें छुसही जाएँगी । वह बैसा हुनर, वैसी बैहतरीन कला-बाजी कदापि नहीं दिखता सकती जैसा शूरोप अम-

रीका की “जैनिटल मैन लेडियाँ” दिखला सकती हैं। इनमें वह कारीगरी, वह कला लाने में इनके तीन जन्म खप जाएंगे, किर भी अपने आत्मा-राम को महारांका है। ये मूर्खाँएँ बैसी चारीक लुबियाँ दर्शाने में शायद ही समर्थ हो सकें। मैं आपको इस मुल्ह दिन्दुस्तानी की इन महागूर्खी नारियों का एक मजेशार किस्सा उनका—

एक सज्जन लंडन से बारिस्टर होकर आये। बेचेरे के दुर्भाग्य से शादी पहले ही दौचुकी थी। और औरत यांवही पुरानी गरिपाटी की ढंग की कूटने वाली। घर की चूही। न वसमें वह तर्जदारी थी। न वज्रनदारी। न वह बगल से माँग कैदती थी, न सट, स्नो का ही इस्तेमाल करती था। बिलकुल धोई घाँड़ “नैटिव बोमेन” थी। बारिस्टर माहध-जिन्होंने यूरोप का तमाशा देखकर आभी टटके ही हिन्दुस्तान की सूखी और नीरस जमीन पर अपना कठम रखा था, बीबी के रंग ढंग जो देखे, दंग रह गये। ‘ओ माई गौड़, बिलकुल फूड़ड़ और “पटीकेट” से एक दम नावाकिफ हिन्दुस्तानी फीमेल—?’ पर बेचारे करते क्या? अभी उसमें भी उतना “पावर” नहीं आया था कि बीबी को मार भगाते। “गले पड़ी ढोककी बजाए सिद्ध” वाला मजमून था। अब उन्होंने अपनी हिन्दुस्तानी स्त्री को “बिलायती बीबी” के रंग में गोतना शुरू किया। बाल सँवारना सिखलाया, स्नो पाउडर मुखड़े पर मलना बतलाया, ऊँची ऐड़ों की जूती पर चलना सिखलाया, हँस रक्ख बातें करने का ढंग, “हाथ हिलाने” का तरीका और मच्छर २ कर बलने के तर्जों अदौ सब बतलाये। दो, चार, दश अंगेजी शब्द भी २८ दिये। और वह औरत इस मुल्क हिन्दुस्तान की एक पराली पवित्रता की भाँति पतिवेष की

सारी आङ्गायें घिना विशेष शिशोधार्य करती रहे । जब बारिस्टर साहब को यह विश्वाग हो गया कि “ओरत अब तुमायरा के लायक हो गई, तो एक दिन बोले—आज तुम्हें हमारे साथ हमारे मित्र मिस्टर बमपिलाट साहब कलकटर क बंगले पर चलना होगा, वे यूरोपियन जैन्टिलमेन औरत की बड़ी इज्जत और कदर करने वाले सज्जन हैं ।

पातदेव की ऐसी आङ्गा सुनकर वह ओल्ड-फ्लूल, इन्डियन वाइफ मन ही मन कुछ भिगकी, कुछ ध्वरायी, भला हम औरतों को साहधो से भिलने का क्या काम ? मर्द, मर्द से मिलता है, रुदी, रुदी से यह पर पुण्य और पर खा का भवानगम कैसा ? फिर इस मुख बमपिलाट से अपनी कगा की देखा-देखी आथवा भेट मुखाकात भी नहीं, भला री उससे क्या बातें करूँ गी ?

बीबी को चुप, और बिलकुल स्तब्ध देखकर बारिस्टर साहब जरा मुँझलाते से बोले—क्यो, वया तुम्हें हमारा प्रस्ताव पसंद नहीं ?

माथा गाढ़े वह बेवकूफ बोली—“नाथ—!”

बारिस्टर साहेब बीच में ही मुख फाड़ते हुए बोल उठे-बेल, यह क्या अनाप शनाप बालने लगी, हम नाथ, पगड़ा, डोर, इसी कुछ नहीं, हम आदमी हैं । और यह भद्दा हिन्दुस्तानी सम्बोधन कभी भूलकर भी मेरे लिये जुबान पर न लाओ । तुम्हें जब कुछ कहना हो “हिंशर हम्वैन्ड,” या “माईं हिंशर” कहकर मुझे प्रकारा करो । सभभा !

वह भौन रही ।

बारिस्टर साहब फिर बोले—बोलो, चलोगी तो ?

वह फिर चुपचाप माथा गाढ़ गड़ी ही रही, अपने ‘साहब’

की उप्र मूर्ति से फिर उसे कुछ कहने का साहस न हुआ । उधर बारिस्टर साहब ने भी अपनी समझ का फाटक खोल दिया, वे समझ बैठे, औरत सिर्फ एक ही फटकार में राजी हो गईं । फटपट 'कार' मँगाने का आर्डर हुआ । तबतक बारिस्टर साहेब ने अपनी "देवी" को "लेडी" बना दिया । सरपर लेडी हैट, बदन पर प्राक, पावों में घृंठनों तक का मोजा और लेडी शू ।

रास्ते भर बारिस्टर साहब समझाते गये, साहब को देख-कर यों सुखराते हुए दौड़कर और सूध स्नेह से उनका दाहिना हाथ पकड़ लेना और निहायत नर्मी से धीरे २ उसे हिला दना, फिर जब उनकी बातों का जबाब देना हो खूब हँस २ कर जबाब देना । खबरदार, इसमें तनक भी ब्रुटि न आने पाए, नहीं तो हमारी भारी भद्र होगी । हम आफिसरों से मुँह दिखाने लायक भी न रहेंगे । मेरा इतने दिन का सिखलाया, बतलाया भाड़ में न भोक देना । बस, सँभल जाओ, देखो वह साहेब को बँगला आ गया, कपड़े-बपड़े सब दुरुस्त करलो ।

सो साहेब, मिठ बमपिलाट साहेब क्लेक्टर के बँगले पर दृष्टि पढ़ते ही इस बेवकूफ औरत का धीरज छूट गया । इसकी छाती स्टार्ट मोटर की तरह "धड़धड़ा" उठी, "हायराम ! अब क्या करूँ ?" किसी तरह वह अपने को बड़ी कठिनता से सँभाले, अपने पतिवेवता के संग साहेब के बँगले में घुसी । खबर की गई और एक जायंट की तरह लम्बा तड़ंगा साहेब भीतर से ही "इल्लो मिस्टर सिंह !" भैंसे की तरह चिंगाइता छील की भाँति इधर को मपटा । वह बेचारी कोप गई, जापरे किस लोक में आई !" उस साहेब ने उन बारिस्टर साहेब से

हाथ मिलाया, फिर उनके परिचय देने पर उनकी स्त्री की ओर भी हाथ बढ़ाया। वारिस्टर साहब ने बड़े आदिस्ते २ तीन चार लाख अपनी इस 'फुजिशा फीमेल' को साहब से हाथ मिलाने के लिये दुनिया, परन्तु फिर भी वह चेष्टा तथा साहस करके वी "इस हथ हिलोआन" के शिष्टाचार में असफल रही। उम पिलाट साहब हृष्ट हास्यकर बोले— 'ओ, इन्डियन फीमेल हय, अभी इसमें बहाट, "शाइनेस" (लज्जा) हय !

साहब का यह रियाकं सुनकर वारिस्टर साहब जैसे कट भरे। आखिर इस जाहिल हिन्दुस्तानी बीबी ने हमारी हेडी करा कर ही दम लिया। खैर, सब लोग मुलाकाती कमर में बैठे। कुछ बातें भी होने लगीं, पर वारिस्टर साहब का चिन लधर न था। वे सोच रहे थे हम कैसे प्रमाणित करें, हम त्रिन-कुल "अपट्रॉडेट" और यूरोपियन प्रथा के सुधरे महापुरुष हैं और हमारी स्त्री भी काफी "एडमान्स" हैं। सहसा उनके दिमाग में यह "कूझाखाना" जमा हो गया— "यदि हम कुछ काल के लिये अपनी बीबी को साहब के पास अकेली छाइ कर हट जाएँ, तो साहब को सोलह आने बौसठ पाई विश्वास हो जाए कि मियाँ-बीबी दोनों ही यूरोपियन प्रथा के पक्के पुजारी तथा एक सुधरे हुए सज्जन हैं।" यह ख्याल आया नहीं कि वारिस्टर साहब भट्ट अपनी कुर्सी से उठ खड़े हुए। उनके उठते ही उनकी स्त्री भी उठी, किन्तु वह उसे तोक्षण नेत्रों से घूरते हुए बोले— "तुम बेठो साहब के पास, मैं अभी आया।"

पति के आमने नेत्रों की तीव्र उमड़ से वह अवश्य कुर्सी पर बैठ तो गई पर उसके होश हवा हो गये। उसे एक अजीब घबराहट और निरावलंबता सी मालूम होने लगी। मानो

बच्चा उनमें अकेला छोड़ दिया गया हो । बारिस्टर साहब के बाहर जाते ही, साहब अब उसी छुर्सी पर उसके बगल में आ जैठे—जिस पर उसके पति बैठे थे—और वेचारे बच्चीसों दाँत भूखे बन्दर की भाँति बिदोर कर बोले—“हम मिस्टर मिह से आपका “ब्यूटी” का बहोट दारीफ सुना हय । हम आपसे मिलकर बहोट खुश हुआ ।

पर वह जाहिल औरत साहेब के इस शिष्टाचारके प्रति उत्तर देने और उनके कुतझ होने के बदले घबरा रे कर बाहर दरवाजे की ओर देख रही थी । “हाय ! हमारे नाथ मुझे किस भेड़िये की माँद में मुझे अकेली छोड़कर चले गये ?” साहब छुर्सी पर बैठे पाँव हिलाते एकटक उसी की ओर निहार रहे थे, शायद अपनी प्रशंसाधी के प्रति उत्तर पाने के हेतु । साहब की ओर उस मूर्ख महिला (!) ने अपनी दृष्टि निक्षेप की—“बापरे ! यह अभागा किन आँखों से मुझे घर रहा है ?” उधर पति के आगमन में भी देर इधर साहेबकी यह गृद्धरुष्टि देख “पटीकेट” से महज नावाकिफ वह “नानसेन्स” (मूर्ख) नेटिव वोगेन एकएक पुक्का फाइ फर घिघिया उठी । साहब ने जो इसे रोते हुए देखा तो वेचारे पहले बड़े चक्कर में पड़े । “अरे यह रो क्यों पड़ी ? यहाँ इसके रो पड़ने की तो कोई दुर्घटना भी नहीं हुई ?” वे घबराये से बोले—वेल भाइ दिअर लेडी, रोदा काहे हैं ? बटाओ, क्या बात है ? वह रोती हुई बोली—हमारे “हव्वैंड” (पति) कहाँ गये ?

साहब संमझ गये यह बिलकुल गँवारी नाश है, अपनी शान दारी और ठाठदारी दिखलाने के लिये इस बेहूदे बारिस्टर ने इस गरीब को हमारे पास घसीट लाया । अब वे गुस्से से मललाते बाहर घारायडे से आकर जोरज़ोर से “ओ मिस्टर मिह-

ओ मिस्टर मिह !” चिलचाने लगे । मिस्टर मिह उधर चाग की तरफ आवारों से पूम रह थे । वे आहेव की पुकार सुनकर दौड़े । साहब की जब दृष्टि इनपर पड़ी तो वे और गुम्मे में घेताब हाकर बोले—वेळ ! दुमने कैमा नानसेम औरट को हमारे पास बैठा दिया, वह बकरी के माफिन “मैं-मैं” करता है, बहोट चिल्ला-चिल्लाकर रोटा है । जब दुम जानटा था वह किसी से “मिक्स” (मिलने) करने का “पावर” नहीं रखता, यूरोप अन एटीकेट उपरे मालूम नहीं, टन दुम काहे बास्टे हमार पास उसको लाना मांगा । दुम उससे भी ब्याहा नानमेंस हय । चला, अभा फौरन उगाको ‘हाऊम’ ले जाने मँगो ।”

बैगिस्टर साहेब बैचारे पर जौरो बीच याजार जूते पढ़े । मारे क्रोध, अपगान और ग्लान के उनका मुखड़ा लाल हो गया । वे अपनी बीबी को लिये भीखते घर आये और फिर छन्दोने कभी ऐसी मूर्खता न की ।

सां साहब इस मूर्ख महादेश के यह तो सब तमाशे हैं— कोई क्या सुधार करे, खाक या पत्थर ! हमारा तो विवार है कि इन जंगली हिन्दुस्तानी बोवियों को कुछ दिन के लिये यूरोप चालान कर दिया जाए और वे वहाँ से आदमी बनकर आवें ।

फिनिश—

“आपका—

तिप्परी जी ।

